इकाई 26 वनस्पति एवं वन्यजीवन

इकाई की रूपरेखा

26.0 उद्देश्य
26.1 प्रस्तावना
26.2 जीव भौगोलिक प्रदेश और वन्यजीव
- 26.2.1 प्रदेश 1: ट्रांस-हिमालय
- 26.2.2 प्रदेश 2: हिमालय
- 26.2.3 प्रदेश 3: भारतीय मरुस्थल
- 26.2.4 प्रदेश 4: अर्ध शुष्क
- 26.2.5 प्रदेश 5: पश्चिमी घाट
- 26.2.6 प्रदेश 6: दक्षिण प्रायद्वीप
- 26.2.7 प्रदेश 7: गंगा का मैदान
- 26.2.8 प्रदेश 8: उत्तर-पूर्वी भारत
- 26.2.9 प्रदेश 9: द्वीप
- 26.2.10 प्रदेश 10: समुद्र तट

26.3 वन्यजीवन का महत्व
26.4 वन्यजीवन पर पर्यटन का प्रभाव
26.5 सारांश
26.6 शब्दावली
26.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

26.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य होने चाहिए कि आप :

- वनस्पति और वन्यजीवन की परिभाषा दें सकें;
- वनस्पति और वन्यजीवन के बीच भेद कर सकें और इन पारिभाषिक शब्दों को उनके सही संदर्भ में प्रयोग कर सकें;
- हमारे देश की विभिन्न जीव-भौगोलिक प्रदेशों में पाई जाने वाली वन्य जीवन प्रजातियों पर एक लेख तैयार कर सकें;
- मानवजाति के लिए वन्यजीवन के महत्व को समझा सकें;
- वन्यजीवन पर पर्यटन के प्रभावों का विश्लेषण तथा उनका विवेचन कर सकें।

26.1 प्रस्तावना

इस इकाई का आरंभ हम उन दो पारिभाषिक शब्दों के अर्थ और उनकी व्यापकता को समझते हुए करेंगे जो इस इकाई के शीर्षक में है, यानी वनस्पति और वन्यजीवन। आप कहेंगे कि यह तो बड़ा ही आसान है, वनस्पति किसी एक क्षेत्र में पाए जाने वाले विभिन्न प्रकार के पेड़-पौधों को कहते हैं। इसी तरह वन्यजीवन में सभी जन्तु आते हैं जो एक निश्चित क्षेत्र में, ठीक ठीक कहतें तो **वन्य क्षेत्र** में रहते हैं भले वे बड़े हों या छोटे, शाकाहारी हों या मांसाहारी, आखेट-जंतु और पक्षी। जरा ठहरिए क्या यह शब्द 'वन्य क्षेत्र' आपके मस्तिष्क में कुछ उत्सुकता पैदा नहीं कर रहा है ? वन्य क्षेत्र उन क्षेत्रों को कहा जाता है जो हमारी पहुंच से बाहर होते हैं; या यूं कह लें इनमें मानव का आवागमन या दखल

नहीं होता। इसका निहित यही अर्थ है कि **उन क्षेत्रों में पाई जाने वाली प्राणि जातियां प्राकृति के साथ पूर्ण तादात्म्य में रहती हैं; वे उस क्षेत्र की जलवायु, मृदा प्रारूपों तथा समग्र भौगोलिक परिस्थितियों के प्रति अनुकूलित रहती हैं। इसके अलावा ये मानव की देखभाल और सहायता के बिना ही अपने बलबूते पर जीवित रहने और अपना जीवन-चक्र पूर्ण करने में समर्थ होती हैं।** ये तो रही बात वन्य क्षेत्र की, तो अब 'वन्यजीवन' शब्द का दायरा क्या है ? क्या इसमें सिर्फ विविध प्रकार का जंतु जीवन ही आता है ? इसका उत्तर यही है कि अब ऐसा नहीं माना जाता। वर्तमान में, **वन्यजीवन का दायरा सिर्फ जंतुओं तक ही सीमित नहीं। अब इसमें वन्य परिस्थितियों में पाए जाने वाले सभी प्राणी मात्र-जंतु, पादप, सूक्ष्म जीव और अन्य अल्पज्ञात जीव** आते हैं।

स्थानिक प्रजाति-एक भूभाग विशेष तक परिसीमित प्रजाति, जैसे *ऐजैडिरैक्टा इंडिका* (नीम) भारतीय उपमहाद्वीप की स्थानिक प्रजाति है।

संकटापन्न प्रजाति: जब किसी प्रजाति की संख्या घटकर गिनी चुनी रह गई हो या उसका आवास इतना सिमट गया हो कि वह प्रजाति विलुप्त होने के कगार पर हो और अगर उसे पर्याप्त संरक्षण न मिले, तो उस प्रजाति को संकटापन्न माना जाता है।

इस तरह 'वनस्पति' वन्यजीवन का ही एक घटक है। अब आपको यह स्पष्ट हो गया होगा कि ये दोनों पारिभाषिक शब्द न तो एक दूसरे के पूरक हैं और ना ही विलोम, जैसा कि 'पुराना मत' था, जो आज तक कुछ लोगों में अभी तक बना हुआ है। इस इकाई में हम अपने देश के विभिन्न जीवभौगोलिक प्रदेशों की विशेषता दर्शाने वाले वन्यजीवन के चर्चा करेंगे। आप दस जीवभौगोलिक प्रदेशों के बारे में परिचित होंगे, जिनके बारे में खंड-1 की इकाई 3 के अनुभाग 3.4 में बताया गया था और इस पाठ्यक्रम की इकाई 4 के अनुभाग 4.5 में भी जिन पर संक्षेप में बताया जा चुका है। इन प्रदेशों को हम एक-एक कर लेंगे और उनकी विशिष्ट भौगोलिक स्थितियों की पृष्ठभूमि में उनके वन्य जीवन पर चर्चा करेंगे। इससे आप वन्यजीवों को दर्ज करने और उन्हें उनकी आवासी स्थितियों से जोड़ने में सक्षम हो सकेंगे। पाठ में दिए गए वन्य प्रजातियों को ढेर सारे चित्र आपको इन संबंधों की पुष्टि करने में सहायक होंगे। प्रत्येक जीवभौगोलिक प्रदेश के वन्यजीवन के वर्णन में स्थानिक और संकटापन्न प्रजातियों की जानकारी भी शामिल है। जब आप किसी दिन ऐसे किसी एक प्रदेश का दौरा करना चाहें, या किसी परियोजना पर काम करना चाहें या फिर संरक्षण के कार्य में योगदान करना चाहें तो यह जानकारी आपके लिए उपयोगी साबित होगी। अगले अनुभाग में हम वन्यजीवन के महत्व के बारे में संक्षेप में बताएंगे जिसके बारे में आप इकाई-4 (अनुभाग 4.5) में पढ़ चुके हैं। अंतिम अनुभाग में वन्यजीवन पर पर्यटन के प्रभावों के बारे में विस्तार से वर्णन दिया गया है। आशा है आपको इस इकाई के अध्ययनों में आनंद आएगा।

उपजाति : यह एक प्रजाति का वर्गिकी प्रविभाग (subdivision) है, जिसमें अन्य उपजातियों के बीच आकृतिक (morphological) भिन्नताएं कुछ कम ही होती हैं, मगर इनका भौगोलिक विवरण या पारिस्थितिकी भिन्न होती है, जैसे 'A' प्रजाति में अनेक उपजातियां a_1, a_2, a_3 आदि होती है।

आकृतिकी (morphological) जीवों की संरचना या बनावट का अध्ययन है।

किस्म: यह उपजाति का एक वर्गिकी प्रविभाग है, जिसमें एक रूप लक्षणों वाले प्राणि आते हैं जिनकी उत्पत्ति आनुवंशिक पार्थक्य के कारण या कृषिकी विभिन्न विधियों के फलस्वरूप होती है।

आनुवंशिक रूप से पृथक जीवों के समूह अन्य समान समूहों के सदस्यों के साथ आनुवंशिक द्रव्य का आदान-प्रदान नहीं करते। या यूं कहें, आनुवंशिक रूप से पृथक जीवों के दो समूह मुक्त रूप में परस्पर प्रजनन नहीं कर सकते हैं।

26.2 जीव भौगोलिक प्रदेश और वन्यजीवन

यूं तो हमारा देश समूचे भूखंड का मात्र 2 प्रतिशत है मगर यह जैव-विविधता का भंडार है। संपूर्ण विश्व की ज्ञात जैव-विविधता का लगभग 5 प्रतिशत हमारे देश में ही विद्यमान है। सजीव जीवों की ज्ञात श्रेणियों के आंकड़ों से ही आपको हमारे देश की 'विपुल जैव विविधता' का अहसास हो जाएगा। हमारे देश में जंतुओं की लगभग 81,000 प्रजातियां हैं, जिनमें 50,000 प्रजातियां कीटों की हैं, और पक्षियों की 1200 प्रजातियां, तो अन्य विभिन्न वर्गों के पादपों की 45,000 प्रजातियां पाई जाती हैं, जिनमें पुष्पी पादपों की 15,000 प्रजातियां* शामिल हैं।

इसके अलावा इन प्रजातियों की अनेक उपजातियां हो सकती हैं, जिनकी अनेक किस्में हो सकती हैं। यही भारत के वन्यजीवन को समूचे विश्व में सबसे संपन्न बनाते हैं। ऐसी विपुल-जैव विविधता का मुख्य कारण है असाधारण रूप से विविध आवासों की भारत में उपलब्धि है। ट्रांस हिमालय के ठंडे और शुष्क उच्च तुंगता वाले भूभाग से लेकर दक्षिण भारत के उष्णकटिबंधी वर्षावन, पश्चिम में झुलसा देने वाला गर्म थार का मरुस्थल से लेकर पूर्वी तट क्षेत्रों के घने कच्छ वनस्पति वन (mangrove forests) और इसी बीच में ऐसी अनेक भिन्नताएं। असल में आवासों के इस व्यापक दायरे को देखने के लिए हमारा समूचा जीवन भी कम पड़ जाएगा।

आपने खंड-1 में पढ़ा ही है कि देश को दस जीव-भौगोलिक प्रदेशों में बांटा गया है। ये हैं : ट्रांस-हिमालय, हिमालय, भारतीय मरुस्थल, अर्ध शुष्क, पश्चिमी घाट, दक्षिण प्रायद्वीप, गंगा का मैदान,

* ये आंकड़े अब तक सर्वे किए गए 70 प्रतिशत भौगोलिक क्षेत्रफल पर आधारित हैं, यह सर्वे अभी जारी है।

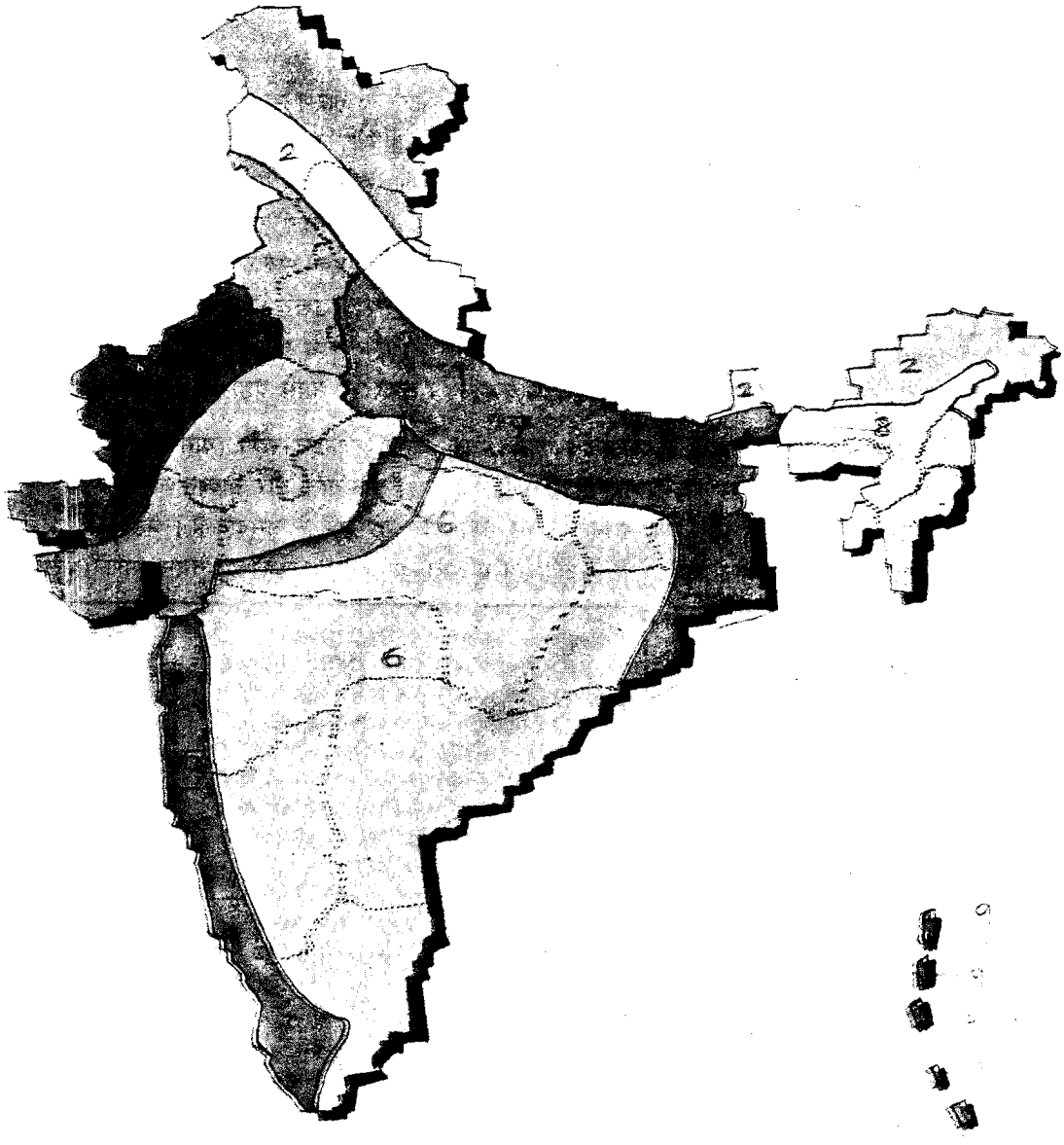

	1.	ट्रांस-हिमालय		6.	दक्षिण प्राय द्वीप
	2.	हिमालय		7.	गंगा का मैदान
	3.	भारतीय मरूस्थल		8.	उत्तर-पूर्वी भारत
	4.	अर्ध-शुष्क		9.	द्वीप
	5.	पश्चिमी घाट		10.	समुद्र तट

चित्र 1 :भारत के जीवभौगोलिक प्रदेश डब्ल्यू०ए०रॉजर्स और एस०एस०पंवार, 1988 से। प्लैनिंग अ वाइल्ड लाइफ प्रोटेक्टेड एरिया नेटवर्क इन इंडिया, खंड-1, पर्यावरण, वन एवं वन्यजीवन विभाग, भारत सरकार।

उत्तर पूर्वी भारत, द्वीप और समुद्रतट (चित्र 1 भी देखें)। इस वर्गीकरण का विकास भारतीय वन्यजीवन संस्थान के रॉजर्स और पांवर (1988) ने किया था, जिसका व्यापक रूप से अनुकरण किया जा रहा है। ये जीवभौगोलिक प्रदेश क्या है ? ये दरअसल प्रमुख प्रजाति-समूहों के द्योतक हैं। इसके अलावा, इन 10 प्रदेशों में प्रत्येक भौतिक, जलवायु और ऐतिहासिक परिस्थितियों की विशिष्टताओं का भी सूचक है। हिमालय और गंगा का मैदान यूं तो दो निकटवर्ती प्रदेशों के उदाहरण हैं, मगर वे एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं।

ये आंकड़े अब तक सर्वे किए गए 70 प्रतिशत भौगोलिक क्षेत्रफल पर आधारित हैं, यह सर्वे अभी जारी है।

26.2.1 प्रदेश-1 : ट्रांस-हिमालय

यह प्रदेश लगभग 1,86,200 वर्ग कि० मी०* में फैला है जिसमें मुख्यत: लद्दाख और लाहौल-स्पीति आते हैं। यह प्रदेश भारत के भीतर के समूचे क्षेत्र से कहीं ज्यादा विस्तृत है, जिसका कारण है उच्च तुंगता वाले पर्वतीय भूभाग, जिनकी ऊंचाई 4500-6000 मीटर तक है। इस स्थलाकृति को भी जोड़ें तो उसका क्षेत्रफल लगभग 26 लाख वर्ग कि० मी० आता है।

* इस क्षेत्रफल में पाकिस्तान के अवैध कब्जे का 83,308 वर्ग कि० मी० और सन् 62 से चीन के अधीन 41,500 वर्ग कि०मी० क्षेत्रफल

पर्यावरण पर प्रभाव

ट्रांस-हिमालयी प्रदेश का वन्यजीवन

अपनी कठोर जलवायु स्थितियों और अवास्य दुर्दम्य भूभाग के कारण इस प्रदेश का पारिस्थितिक तंत्र अति भंगुर और संवेदनशील है। भारत के इस प्रदेश में तीन पर्वतमालाएं पसरी हुई हैं : जसंकार, लद्दाख और काराकोरम। प्रत्येक ढाल प्रावण्य (slope) का अपना एक प्रधान घाटी-प्रावण्य तंत्र (vally-slope system) है। जीव विज्ञान की दृष्टि से यह तीनों पर्वत-मालाएं अति रोचक हैं। पूर्व में लद्दाख और जसंकार पर्वतमालाएं तिब्बती पठार के दक्षिणी छोर और एक आंतरिक जल-निकास कच्छ और झील प्रणालियों के उद्गम से जा मिलती है। जैसे त्सो मोरारी। उत्तर में इसका अधिकांश क्षेत्र हिम-रेखा से ऊपर है। सियाचिन ग्लेशियर, इस क्षेत्र का एक मुख्य घटक है, जिसका क्षेत्रफल 1,180 वर्ग कि० मी० है। वस्तुत: यह ध्रुव प्रदेश से बाहर इस तरह का सबसे बड़ा क्षेत्र है।

स्टेप (steppe)- एक शुष्क घासीय मैदान

किसी पादप या समुदाय की नेट प्राथमिक उत्पादकता (net primary productivity) उसके शुष्क भार में अर्जित सकल वृद्धि है।

लद्दाख और लाहौल-स्पीति की वनस्पति मुख्यत: एक विरल अल्पाइन-स्टेप (घास का मैदान) है। इसके अलावा यहां अनेक स्थानिक प्रजातियां भी पाई जाती हैं। पाकिस्तान और तिब्बत के साथ-साथ भारत के अंदर इस क्षेत्र में समूचे विश्व के विपुल वन्य भेड़ों और बकरियों के समुदाय हैं। भेड़ों की यहां आठ विशिष्ट प्रजातियां और उपजातियां मिलती हैं। यूरियल, या शापु, अरगलि यां नयन, मार्को पोलो भेड़,

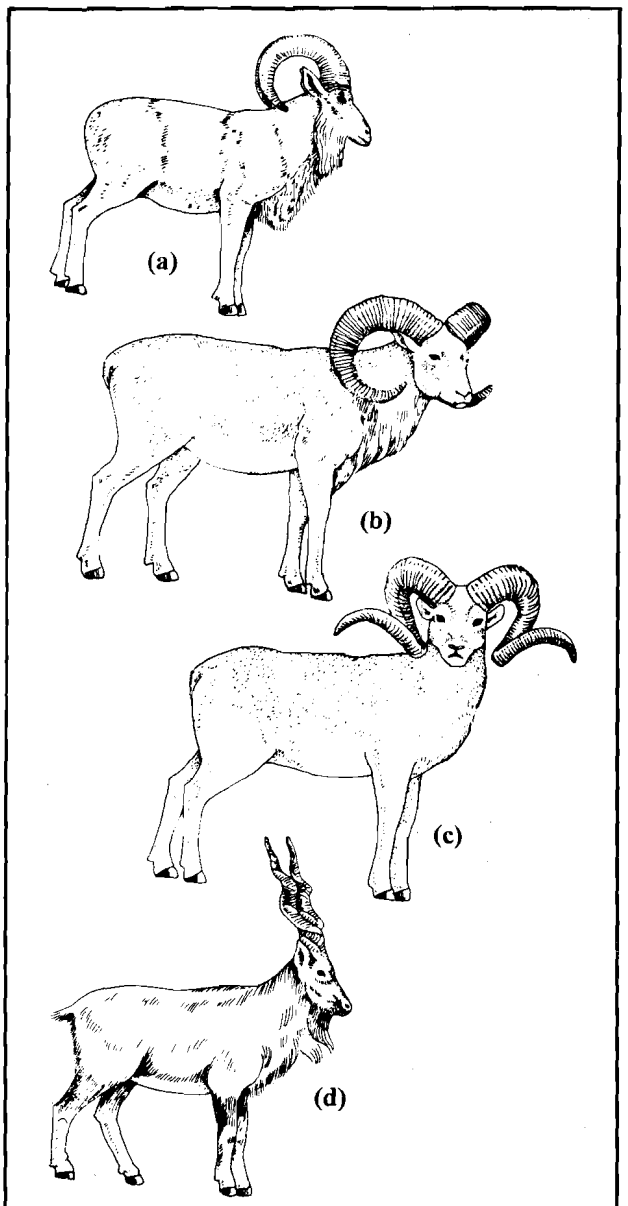

चित्र 2 : ट्रांस-हिमालय प्रदेश में भेड़ की प्रजातियां : a) यूरिल *(ओविस ओरिएंटैलिस)*; b) नयन *(ओ.एमॉन हॉजसोनाइ)*; c) मार्को पोलो (ओ.एमॉन पोलाइ); और d) मारखोर *(कैप्रा फाल्कनेरी)*

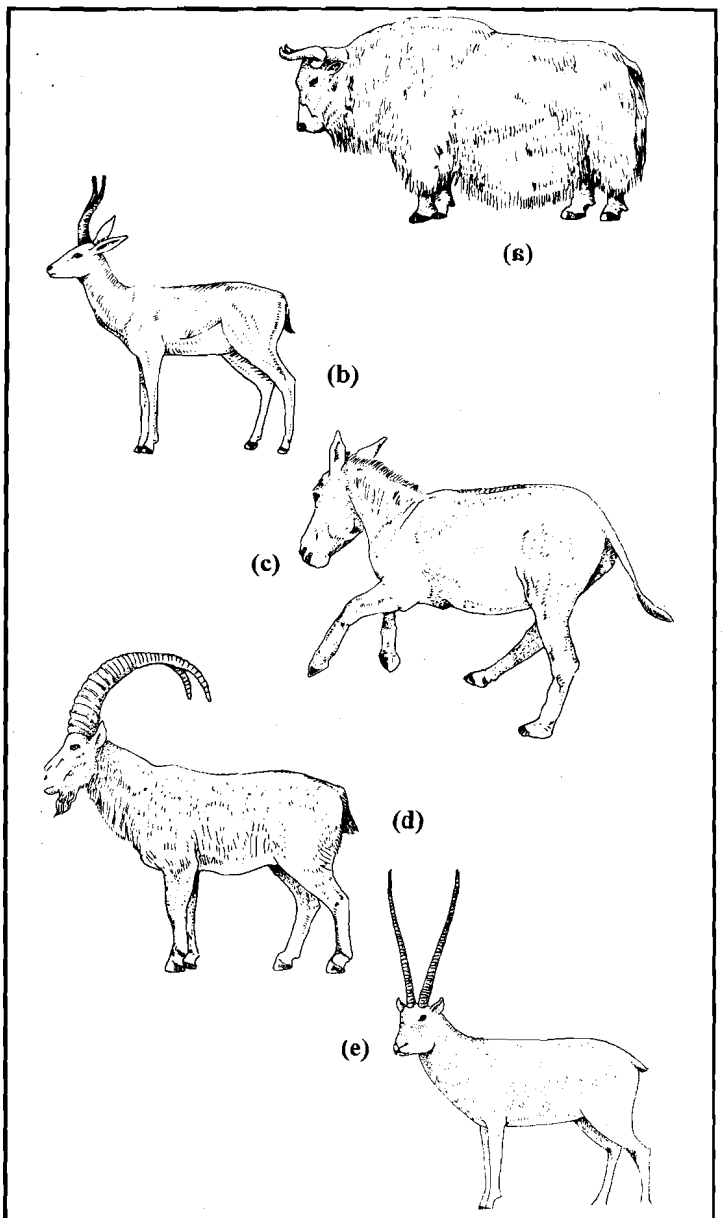

चित्र 3 : ट्रांस-हिमालय के कुछ शाकाहारी जंतु : a) जंगली याक *(बॉस ग्रनिएंस)*; b) गेजेल चिंकारा *(गेजेला गेजेला)*; c) तिब्बती गधा *(इक्वस हेमिओन्स)*; d) साकिन *(कैपरा इबेक्स)*;और e) तिब्बती हिरन *(पैंथोलोप्स हॉजसोनाई)*।

मारखोर चित्र (2a-d) और भराल (Blue sheep)। चपटे पठारी क्षेत्रों में चरने वाले जंतुओं का एक विशिष्ट समुदाय मिलता है जिसमें जंगली याक, तिब्बती गधा, तिब्बती कुरंग (गुजेल), साकिन (Ibex) और तिब्बती मृग हैं (चित्र 3a-e देखें)। इन शाकाहारी जंतुओं के अतिरिक्त मांसाहारी जंतुओं का इतना ही विशिष्ट समूह भी मिलता है, जिसमें साह (Snow Lcopard)] भेड़िया पैलास कैट और अन्य छोटे जंतु जैसे मारबल्ड पोल कैट, पाइक और मॉर्मोट चित्र (4a-d) आदि आते हैं। इनमें पैलास कैट स्थानिक है। झीलों और कच्छों में भी अपना एक विशिष्ट पक्षिजात (avifauna) पाया जाता है, जिसमें काले कंठ वाला कृष्णग्रीव सारस शामिल है जो एक प्रवासी पक्षी है। किसी एक क्षेत्र के पक्षियों को सामूहिक रूप से पक्षी जात कहा जाता है।

इस पारिस्थिक तंत्र की प्राथमिक उत्पादकता बहुत कम है, इसलिए जीव संख्याओं में भारी तुंग प्रवास (altitudinal migration) देखने को मिलता है। मानव का बढ़ता दखल इस बेहद भंगुर पारिस्थतिक-तंत्र के नाजुक पारिस्थितिकी संतुलन को संकट की ओर धकेल रहा है।

26.2.2 प्रदेश-2 : हिमालय

भारत में हिमालय पर्वत श्रृंखला पश्चिम में भूमध्यसागरी क्षेत्रों से लेकर पूर्व में आर्द्र चीन-मलय क्षेत्रों तक कोई 2,000 कि० मी० तक फैली हुई है। भारत में इस प्रदेश में 236,300 वर्ग कि०मी० क्षेत्रफल आता है जो भारत के सकल भू पृष्ठ का लगभग 7 प्रतिशत है। खड़ी ढालों, कच्ची मिट्टी (असंपीडित मृदा) और भारी वर्षा के कारण यहां का पर्यावरण बेहद कठोर रहता है। जिस पर मानव आबादी का दबाव और इमारती लकड़ी, जलावन और भोजन की मांग बड़ी उग्र है। इन सभी कारणों से इस पारिस्थतिक तंत्र में बड़ी तेज गति से ह्रास हुआ है जिसके फलस्वरूप इस प्रदेश में पाए जाने वाले जैविक स्रोतों की भारी क्षति हुई है। भारत में अन्यत्र की तुलना में संकटापन्न प्रजातियों की संख्या हिमालय में सबसे अधिक है।

हिमालय प्रदेश का वन्यजीवन

आवासी और प्रजाति विविधता के मामले में हिमालय प्रदेश भारत में सबसे विपुल क्षेत्रों में एक है। इस प्रदेश की सीमा कई अन्य परिस्थितिक तंत्रों से मिलती है (चित्र 1 देखिए) इसका वन्यजीवन इतना विविध है कि हमें इसके बारे में जानने के लिए तुंगीय और देशांतरीय पर्वतमालाओं के साथ-साथ इसके पूर्व-पश्चिमी अक्ष के समांतर देखना जरूरी हो जाता है। आइए पहले हिमालय की तुंगता और देशांतरीय पर्वतमालाओं में पाए जाने वाले वन्यजीवन का अवलोकन करें। ये हैं :

i) **निचले उपोष्ण गिरिपाद** : इनमें विशेष मिश्रित पर्णपाती वनस्पति समुदाय पाया जाता है जो चीड़ पाइन (चित्र 5a) और फिर बांज (Ban oak) में जा मिलता है। प्राणिजात में मुख्यत: सांभर, मुंटजैक (Muntjac) जंगली सूअर (चित्र 6a-c), काला भालू, गोरल (चित्र 6d) और कलीज फीजेंट हैं। पर्णपाती समुदाय उन पादपों को कहा जाता है जो अपनी पत्तियां मौसम आने पर त्याग देते हैं।

ii) **शीतोष्ण क्षेत्र** : ये 3500 मीटर से नीचे स्थित होते हैं। इस प्रदेश में वनस्पति प्रारूपों का जटिल मिश्रण पाया जाता है, जिसमें मेपिल (चित्र 5b) और अखरोट, मोरू तथा बांज (चित्र 5c) के वन और नाना किस्म के

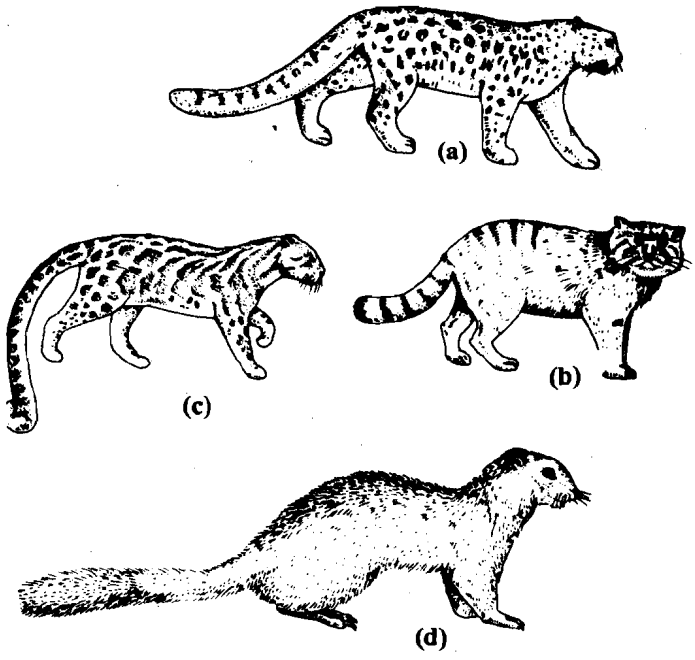

चित्र 4 : ट्रांस-हिमालय प्रदेश के कुछ मांसाहारी जंतु। a) साह (*पैंथरा अन्सिया*) ; b) पैलास कैट (*फेलिस मैनुल*) ; c) मार्बल पोल कैट (*फेलिस मारमोरैटा*) ; और मारमॉट (*मारमॉट कौडेटा*)।

शंकुवृक्ष (कोनिफर) ब्लू पाइन, फर (देवदारू) और स्प्रूस है। (चित्र 5d-g)। ये सभी तुंगला अनुक्रम में उगते हैं। प्राणिजात में कस्तूरी मृग (चित्र 6e), सेराव (चित्र 6f), कोकला और मोनल फीजेंट आते हैं। जाड़ों में उच्च-तुंग प्राणिजात, जैसे ताहर (Tahr) (चित्र 6g) इन क्षेत्रों की ओर चले आते हैं।

iii). **उप अल्पाइन क्षेत्र** : इस क्षेत्र में भूर्ज और रोडोडेन्ड्रॉन (बुरूंश) (चित्र 5b) के वन और (कुंज) झाड़ीदार वनस्पति पाई जाती है जो किस्म-किस्म की बूटियों से भरे घास-स्थलों को अपने में समाए रहते हैं। ये समुदाय अल्पाइन समुदायों में जा मिलते हैं, 5000 मीटर की ऊंचाई पर जिनमें वनाच्छादन विरलतर या छिटपुट रह जाता है तथा जहां बस चट्टानों और बर्फ की प्रधानती रहती है। यहां कस्तूरी मृग, सेराव और ताहर निचली पर्वतमालाओं में भराल के साथ पाए जाते हैं। उधर पश्चिम में अधिक ऊंचाई पर साकिन अधिक पाए जाते हैं। तुंगता (ऊंचाई) के साथ-साथ वनीय क्षेत्रों के फीजेंट की जगह हिम मुर्गी (snow cock) ले लेती है। चीते की जगह हिम तेंदुआ और भेड़िया ले लेते हैं। काले भालू की जगह भूरा-भालू ले लेता है।

पूर्व पश्चिम अक्ष के समांतर चलने पर हमें अभिलाक्षणिक समुदाय भी दिखाई देते हैं। हम इस अक्ष को तीन उप-प्रदेशों को विभाजित करते हैं। ये हैं : पश्चिमी, मध्य और पूर्वी प्रदेश।

i) **पश्चिमी प्रदेश** : यह अपेक्षतया शुष्क क्षेत्र हैं जिसमें देवदार (चित्र 7a) और ब्लू पाइन वन पाए जाते हैं। इसे अलावा इसमें घास स्थलियों के व्यापक विस्तार देखने को मिलते हैं। इस क्षेत्र की विशेषता बोविडों (bovids) की अनेक प्रजातियां हैं। जैसे इनमें भराल, साकिन, मारखोर, गोरल, सेराव और ताहार। ताहर अब कश्मीर से लुप्त ही हो चुका है। हंगुल जो कि लाल-हिरन की उपजाति है, इस क्षेत्र तक ही सीमित है।

वृक्षीय जंतु – वृक्षवासी यानी पेड़ों में रहने वाले जंतु।

ii) **मध्य प्रदेश** : विशाल शाकाहारी जंतुओं का इसमें लगभग नगण्य प्रतिनिधित्व है। साकिन, मारखोर और हंगुल की आबादी घटकर लगभग शून्य हो चुकी है। सिक्कमी महामृग तो भारतीय भूभाग से विलुप्त हुआ मान लिया गया है।

iii) **पूर्वी प्रदेश** : अन्य क्षेत्रों में पाए जाने वाले भूरा भालू, भराल व ताहर यहां नहीं मिलते। मिश्मि ताकिन नामक एक शाकाहारी जंतु यहां मिलता है (चित्र 8a)। इस क्षेत्र में अपेक्षाकृत उच्च वृक्ष रेखा (tree line) पाई जाती और यह क्षेत्र अधिक ऊंचाई पर मिलने वाले वृक्षीय वन जन्तुओं को अवलंबन देता है। बिन्टुरॉग, लाल पाण्डुक (Red panda) ;(चित्र 8b.c) और लघु बिडालवंशी यहां पाए जाने वाले पूर्व के विशिष्ट प्राणिजात घटक हैं। आर्किड यहां प्रचुर मात्रा में है (चित्र 7b,c) में इनके दो उदाहरण दिखाए गए हैं और अल्पाइन क्षेत्रों में झाड़ीदार, नाटे रोडोडेन्ड्रॉन काफी संख्या में मिलते हैं।

इस प्रदेश के लगभग सभी पादप और जंतु समूहों में स्थानिकता काफी ज्यादा पाई जाती है। यद्यपि कुछ प्रजातियां हिमालय में व्यापक रूप से मिलती हैं, अन्य प्रजातियों का दायरा थोड़े में सिमटा मिलता है। स्थानिक प्रजातियों के अलावा इनमें कुछ संकटापन्न प्रजातियां भी हैं। जैसा कि पहले बताया गया है इस क्षेत्र को अति ह्रासमान पारिस्थितिक तंत्र माना जाता है। कई बड़े स्तनधारी संकटापन्न प्रजातियों की सूची में है। इसके संकेत मिल रहे हैं कि भारतीय क्षेत्र से सिक्कमी महामृग का लोप हो चुका है। सभी प्रमाण संकेत दे रहे हैं कि कश्मीर से ताहर विलुप्त हो चुका है सो वेस्टर ट्रैगोपान की भी यही नियति रही है। मारखोर, ताहर और सेराव की आबादी में भारी कमी आ चुकी है। हंगुल महामृग तो वस्तुत: एक आरक्षित क्षेत्र तक सिमट कर रह गया है।

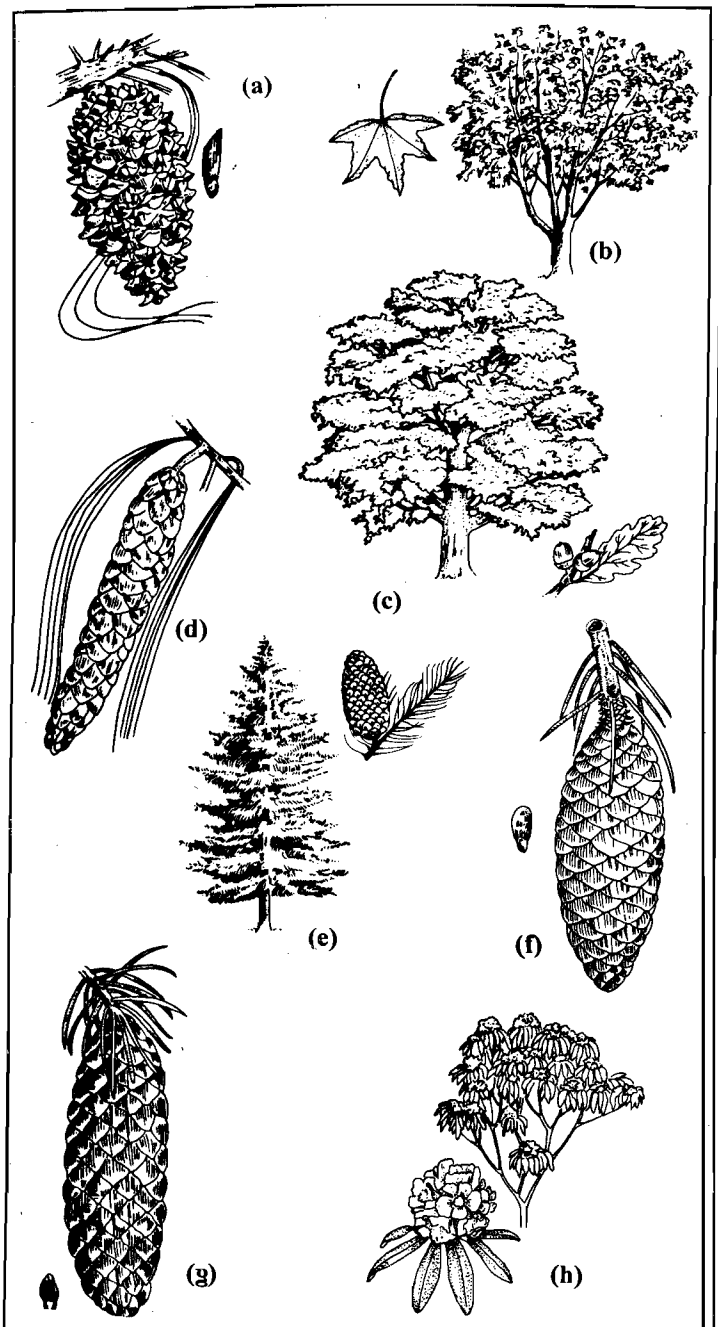

चित्र 5 : हिमालयी वनस्पति के कुछ प्रतिनिधि सदस्य। a) चीड़ *(पाइनस रॉक्सबर्घाइ)* का एक शंकु : ; b) मैपिल *(एसर प्रजाति)* ; c) बांज *(क्वेरस प्रजाति)* ; d) ब्लू पाइन *(पाइनस वैलिचियाना)* का एक शंकु; e) फर *(एबीज प्रजाति)* का वृक्ष और शंकु; f) पूर्वी हिमालय का स्प्रूस *(पिक्का स्पाइनूलोसा)* एक शंकु; g) राडोडेन्द्रान

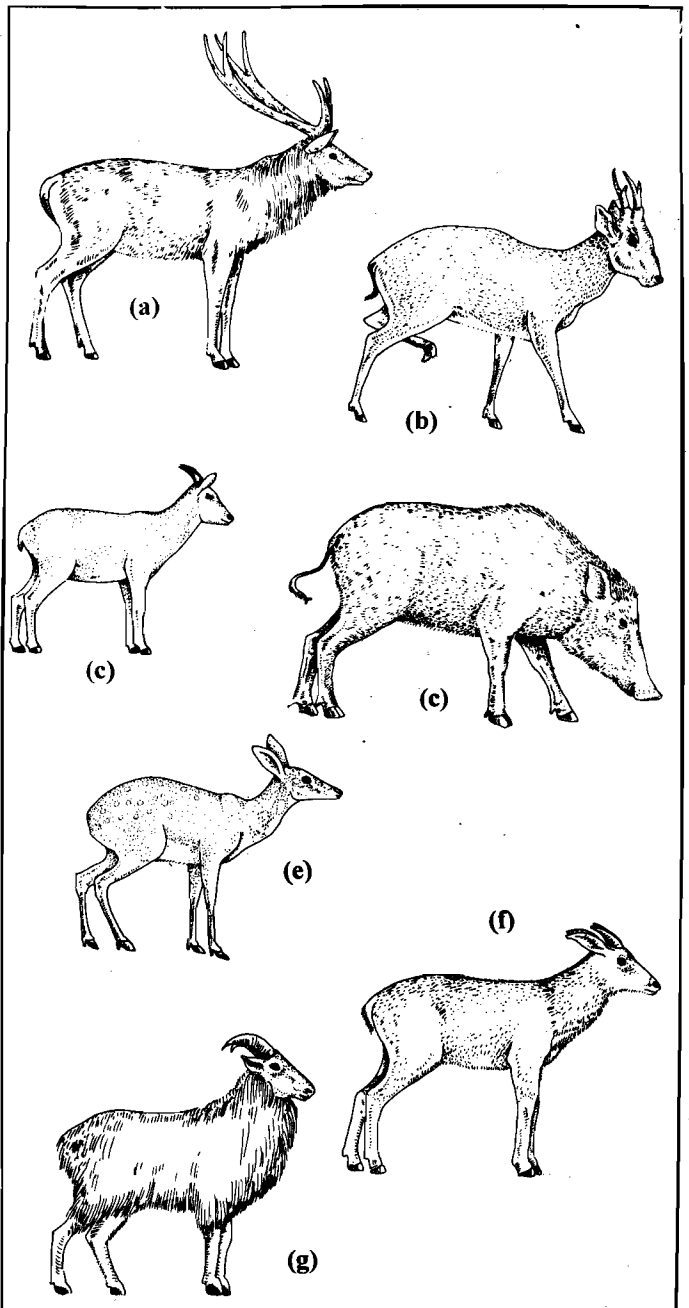

चित्र 6 : हिमालय की तुंग और देशांतर पर्वतमालाओं में पाए जाने वाले वन्यजीवों की कुछ प्रजातियां a) साभर *(सेर्वस यूनिकलर)* ; b) मुटजैक *(मुंटिएकस मुटजैक)* ; c) जंगली सूअर *(सुस सिरोफा)* ; d) गौरल *(निमॉरीडस गोरल)* e) कस्तूरी मृग *(मॉस्कस मास्किफेरस)* f) सेराव *(कैप्रिकॉर्निस समुद्रन्सिस* और g) ताहर *(हिमीट्रैगस जेमलैबिक्स)*।

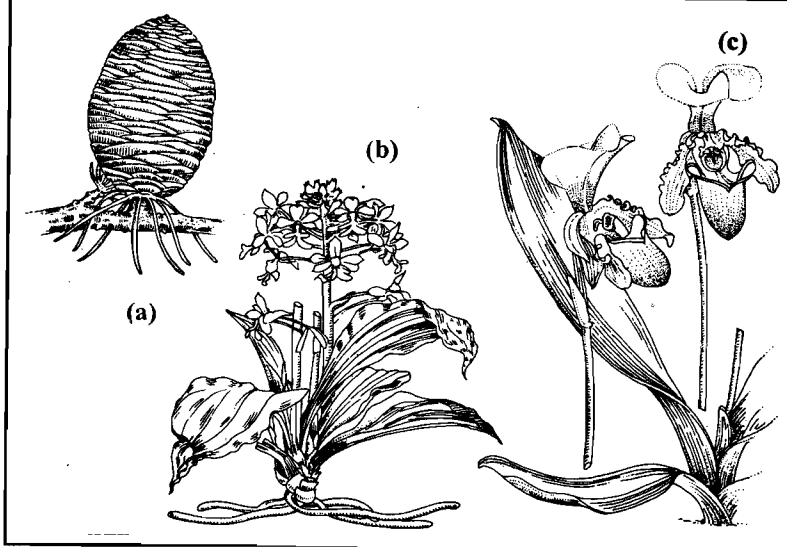

चित्र 7 : a) देवदार *(सेड्रास डियोडारा)* हिमालय के पश्चिमी क्षेत्रों में बहुलता में मिलता है। b,c) ऑकिड पूर्वी हिमालय प्रदेश की विशिष्ट वनस्पति की रचना करते हैं। b) कैलेन्थी ट्रिप्लिकेटा और c) पैफियोपेडिलम *(स्वाइसेरिएनम)*

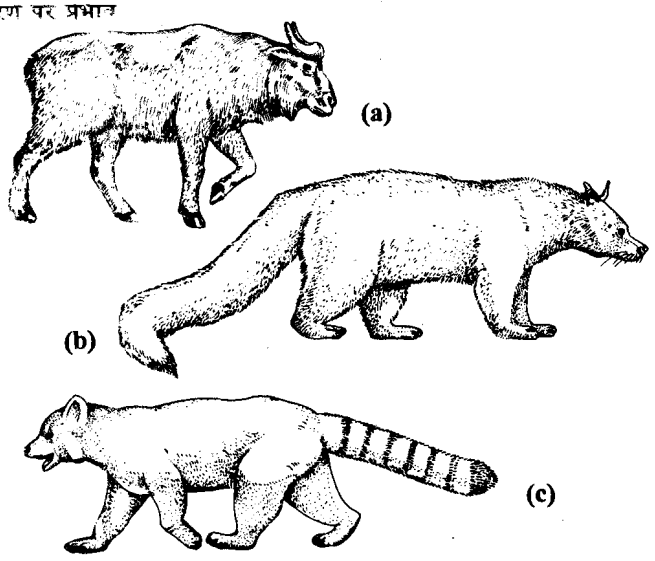

चित्र 8 : पूर्वी हिमालय की कुछ जंतु प्रजातियां। a) साकिन *(ब्यूडोरकैस टैक्सीकलर)* और लाल पांडुक *(ऐंतुरस फुलजेन्स)*।

26.2.3 प्रदेश-3 : भारतीय मरुस्थल

देश के पश्चिमी भाग में स्थित है यह प्रदेश और इसे थार वन मरुस्थल कहा जाता है। यह पश्चिमी गुजरात और पश्चिमी राजस्थान के भूभाग में फैला हुआ है। पंजाब और हरियाणा के कुछ भाग कभी इस मरूस्थल का अंग थे, लेकिन सिंचित खेती ने स्थिति बदल डाली है। जीवभौगोलिक दृष्टि से थार सहारा-अरबी मरूस्थल के उस तंत्र का एक पूर्वी विस्तार है जो ईरान, अफगानिस्तान, बलूचिस्तान से होता हुआ भारत-पाकिस्तान सीमा तक फैला हुआ है। वर्षा के बेहद मौसमी होने और पशुधन के भारी दबावों के कारण यह एक भंगुर और संवेदनशील पारिस्थितिक तंत्र बन गया है।

भारतीय मरुस्थल का वन्यजीवन

मरुस्थली प्रदेश का वन्यजीवन विचित्र और अनूठा है। यह इसलिए नहीं कि इसमें भारी विविधता या घनत्व है। बल्कि यह मरुस्थली परिस्थितियों के प्रति असाधारण पारिस्थितिकी अनुकूलनों के कारण है। इनमें अनेक प्रजातियां थार का मरुस्थल की स्थानिक प्रजातियां हैं। जंगली गधे की एक विशिष्ट उपजाति कच्छ की खाड़ी में सिमट कर रह गई है। पाकिस्तान में इसकी आबादी लुप्त हो चुकी है। इसके अलावा मरू लोमड़ी मरूबिलाव (चित्र 9a), डूबारा सारंग (Houbara bustard) और भाटतीतर (sandgrouse) की कुछ जातियां भी थार क्षेत्र तक सीमित रह गई हैं। हंसावर *(फ्लैमिंगी)* जैसे पक्षियों के लिए पूरे भारतीय उपमहाद्वीप में एक मात्र प्रजनन स्थल इसी भूभाग में है। ये कच्छ की खाड़ी में ही प्रजनन करते हैं। (चित्र 10a) इसके अलावा कई प्रजातियों के नाम संकटापन्न प्रजातियों की सूची में दर्ज हैं। उदाहरण के लिए चिंकारा, या काला हिरन ब्लैकबक या काला हिरन (चित्र 10b) भेड़िया, स्याहगोश (caracal) चित्र (9c) और सारंग (Great Indian Bustar) (चित्र 10b) की अच्छी खासी आबादी इसी प्रदेश में मिलती है। पादप समुदाय

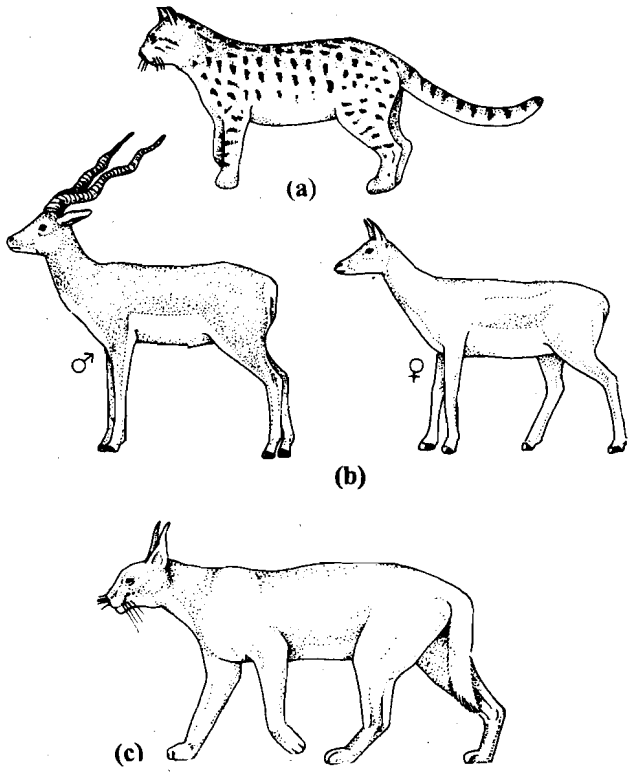

चित्र 9 : a) मरू बिलाव *(फेलिस लिबिका)*; ब्लैकबक (काला हिरन) *(एंटीलोप सर्विकापी)* नर और मादा (♂) और स्याह-गोश *(फेलिस कैराकल)*।

चित्र 11 : काबुल *(प्रोसोपिस ज्यूलिफ्लोरा)* की एक टहनी। इस प्रदेश में व्यापक रूप से वितरित यह एक मध्यम ऊंचाई वाला जलाभावसह (शुष्क मरू जलवायु में उगने वाला) वृक्ष है यह।

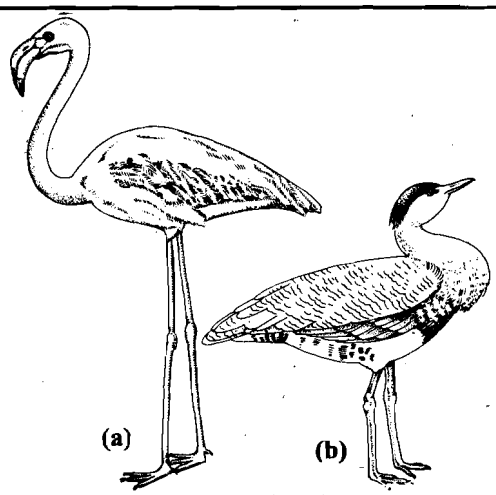

चित्र 10 : a) एक हंसावर *(फीनिकॉप्टेरस रोजियस)* । हंसावर सिर्फ मरूस्थलों में ही प्रजनन करते हैं। सारंग (Great Indian Bustard) *(कोरियौटिस नाइग्रिसेप्स)*, मरू वासी एक और पक्षी प्रजाति।

भी बेहद अनूठे हैं। कच्छ की खाड़ी में हर मानसून में काफी इलाकों में खारे या लवण जल की बाढ़ आ जाती है और ऐसे में लवणमृदोद्भिदों (halophytes) की एक विशिष्ट कच्छ लवण झाड़ियों के पादप समुदाय यहां उग आते हैं। *प्रोसोपिस सिनरेरिया* (Prosopis cineraria) *सैल्वाडोरा ओलिओपाइडिस* (Salvadoraoleoides) आदि भारतीय मरूस्थल में आम वृक्ष हैं। मानव बसासत ने मरू भूमि को काफी बदल डाला है, जिसके फलस्वरूप *प्रोसोपिस ज्यूलीफ्लोरा* (Prosopis juliflora) जैसी आकर्षक एक स्थानिक प्रजातियां बड़े पैमाने पर अब फैल रही हैं।

26.2.4 प्रदेश-4 : अर्ध शुष्क

508,000 वर्ग फेली कि०मी० के क्षेत्रफल में फैला यह प्रदेश हमारे देश के कुल भूभाग का 15% क्षेत्र घेरे हुए हैं। अनेक घास प्रजातियों और स्वादिष्ट, खाई जा सकने वाली झाड़ियों की उपस्थिति ने इस प्रदेश को नाना प्रकार के कई वन्यजीव प्रजातियों का प्रिय अरण्य बना दिया है। इस प्रदेश की सीमा पश्चिमी गुजरात और राजस्थान, महाराष्ट्र से मिलती है और इसमें पंजाब, हरियाणा और मध्य प्रदेश के भूभाग आते हैं।

अर्ध शुष्क प्रदेश का वन्यजीवन

इस प्रदेश का पश्चिमी एशिया, मुख्यतः पाकिस्तान, ईरान, मध्य-पूर्व और उत्तरी अफ्रीका के साथ दृढ जैविक संबंध है। यहां पाए जाने वाले पादपों में अफ्रीका सजातियता दिखाई देती है। जैसे *ऐकेशिया* प्रजातियां, *ऐनोगाइसस* प्रजातियां, *बैलेनाइटीज* प्रजातियां, *कैप्पैरिस* प्रजातियां और *ग्रिविया* प्रजातियां (चित्र 12)। अरावली और उससे जुड़ी पहाड़ियों की

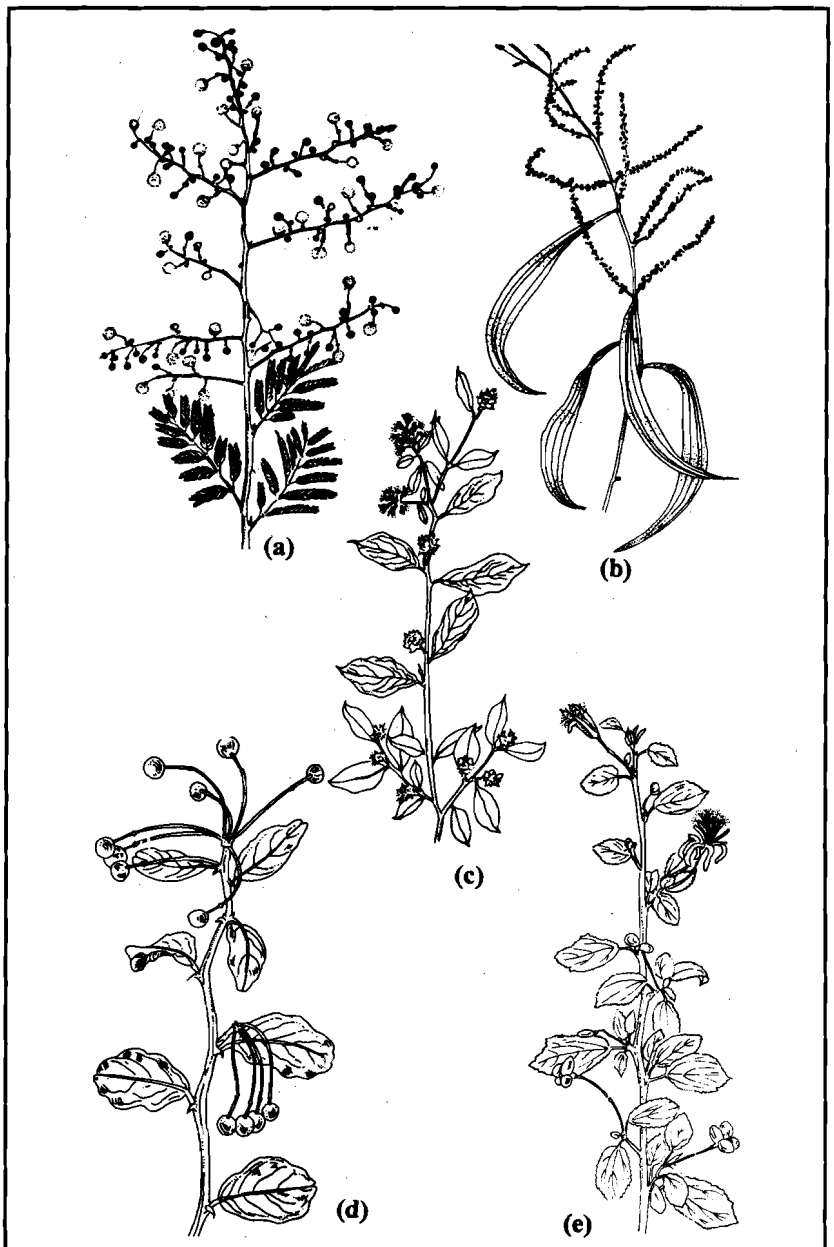

चित्र 12 : अर्ध-शुष्क प्रदेश के पादप : a) *ऐकैशिया ल्यूकोफ्या* (रोंज); b) *ऐकैशिया औरीक्यूलिफोर्मिस* (आस्ट्रेलियाई वाटल); c) *ऐनोगाइसस पेन्डुला* (घोय, सिरस); d) *कैप्पैरिस सैपियारिया* (कंथारी); और e) *ग्रिविया टीनैक* (रामचना)।

ढालों पर आपको *एनागाइसस पेन्डुला (Anogeisus pendula)* के यूथी वन देखने को मिल जाएंगे। यह प्रजाति इस रूप में सिर्फ इसी क्षेत्र में पाई जाती है। इस क्षेत्र के इतर ऐ *पेन्डुला* उत्तरी मध्य प्रदेश के जंगलों में सागौन के साहचर्य में मिलता है।

प्राणिजात में बड़े शाकाहारी जंतु मिलते हैं - काला हिरन (ब्लैक बक), चौसिंगा, गुजेल और नीलगाय (चित्र 13a), सांभर वनाच्छादित पहाड़ियों और शीतल नम घाटी क्षेत्रों तक ही सीमित पाए जाते हैं। मांसाहारी जंतुओं में एशियाई शेर गुजरात में सिमट कर रह गया है और चीता तो लुप्त ही हो चुका है। इस प्रदेश में पाई जाने वाली अनेक प्रजातियां का घनत्व बहुत घट गया है और ये संरक्षण की रुचि के केन्द्र हैं जैसे स्याहगोश, सियार, भेड़िया, रीछ (sloth-bear) (चित्र 13b), काला हिरन (ब्लैक बक), सारंग, लघुतृणमयूर या खरमोर (Lesser Florican) (चित्र 13c), हंसावर और जलमुर्गी की प्रजातियां। नदियों और झीलों में भी विशाल जीवरूप मिलते हैं जैसे मगरमच्छ - मगर और घड़ियाल तथा कछुओं की आबादी, तारक समुद्री कच्छपों (Star Tortoise) की विशालतम आबादी इसी प्रदेश में मिलती है।

26.2.5 प्रदेश-5 : पश्चिमी घाट

पश्चिमी घाट भारत के प्रमुख सदाबहार उष्णकटिबंध वन भागों में एक हैं। ये कुल 160,000 वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल में फैले हुए हैं। पश्चिम में यह प्रदेश समुद्र तट से घिरा है और पूर्व में इसकी सीमा दक्षिण प्रायद्वीप प्रदेश से लगी हुई है। सदाबहार उष्णकटिबंधी वन इस प्रदेश के लगभग एक तिहाई क्षेत्रफल को घेरे रहते हैं। हाल के कुछ वर्षों में इन वनों का एक बड़ा भाग इस कदर नष्ट हो चुका है कि इनका संरक्षण चिंता का बहुत बड़ा विषय बन गया है। इसका कारण इसकी असाधारण जैविक विपुलता है। भारत के लगभग दो तिहाई स्थानिक पादप इसी भूभाग में सिमटे हुए हैं। किंतु इनमें से अनेक प्रजातियों की उपयोगिता का दोहन अभी तक नहीं हो सका है। नाना प्रकार के जैविक समुदायों को आश्रय आधार देने के अलावा इस प्रदेश के वन यहां के जलीय चक्र को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं।

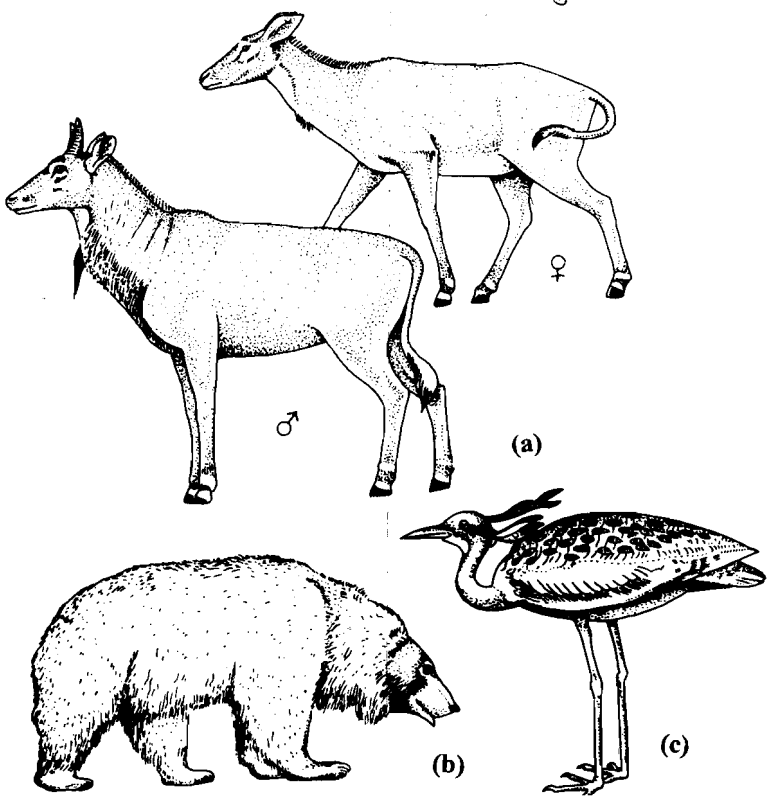

चित्र 13 : अर्ध-शुष्क प्रदेश के कुछ प्राणिजात घटक : a) *नीलगाय बॉस्क्लैफस ट्रैगोकैमिलस* मादा (O') और नर; b) रीछ (*मेलुर्सस अर्सिनस* और खरमोर (*सिफियोटिडीज इंडिका*)।

पश्चिमी घाटों का वन्यजीवन

पश्चिमी घाटों का विस्तार लगभग 1,500 कि० मी० लंबा है, यह क्षेत्र अपने में तापमान और वर्षा की भारी प्रवणता समेटे रहता है, जिसके फलस्वरूप नाना प्रकार के जातीय संबंध उत्पन्न होते हैं। देशांतरत: घाट पश्चिम में समुद्र सतह से फैलते हुए एकाएक उठता हुआ 2,700 मीटर ऊंचे एक अति विदरित पठार में जा पहुंचते हैं और फिर उतने ही आकस्मिक ढंग से यह 500 मीटर से नीचे दक्षिण मैदानों में उतर जाते हैं। यह प्रवणता सदाबहार से अर्धसदाबहार, आर्द्र पर्णपाती से शुष्क पर्णपाती वनस्पति रूपों में परिर्वतनों का मुख्य कारण हैं। यह लंबी पर्वत श्रृंखला कुछ स्थानों पर चौड़ी घाटियों द्वारा कटी रहती हैं, जिससे अल्प गमनशील प्रजातियों का बिखराब रूकता है और स्थानीय जाति-उद्भव को प्रोत्साहन मिलता है। इसके प्रमुख जीवभौगोलिक अवरोध वन-अंतराल हैं मेयर गॉर्ज, पालघाट अंतराल और शेनकोट्टा अंतराल जो नीलगिरी अन्नामलै और अगस्त्यमलै पर्वत खंडों को एक दूसरे से अलग रखते हैं। इस प्रदेश के समग्र भूभाग की चर्चा कर लेने के बाद आइए अब इसके पादप जीवन के बारे में जानें।

भारत में पाई जाने वाली पुष्पी पादपों की कोई 15,000 प्रजातियों में से 4,000 यानी 27 प्रतिशत इसी प्रदेश में मिलती हैं। तिस पर अचरज यह कि पश्चिमी घाट समूचे भूभाग का सिर्फ 5 प्रतिशत है। इन 4,000 प्रजातियों में भी लगभग आधी (1,800 प्रजातियां) सिर्फ इसी भूभाग में पाई जाती हैं।

इस प्रदेश के 1,500 कि०मी० विस्तार में पाई जाने वाली भौगोलिक भिन्नताओं के बारे में हम पहले बता चुके हैं। इसी तरह सदाबहार वनसंरचना भी इन घाटों की समूचे विस्तार में समरूप नहीं रहती। इनकी प्रभावी प्रजातियों की पहचान के आधार पर इनके विशिष्ट विभाजनों का वर्णन सारणी- 1 में दिया गया है।

सारणी -1 : पश्चिमी घाटों के विस्तार में पाए जाने वाले प्रमुख प्रकार की वनस्पतियां।

क्रमांक	वनस्पति	प्रभावी कारक
1)	*ब्राइडेलिया-सिजीयिम-फाइकस-टर्मिनेलिया*	शीतकाल तापमान तथा शुष्क मौसम की अवधि
2)	*मिमेसिलोन-सिजीजियम-ऐक्टिनोडाफेन*	
3)	*पर्सिया-होलीगार्ना-डायोस्पारॉस*	
4)	*डिप्टेरोकार्पस-मिस्वा-पैलैक्विअम*	
5)	*कलेनिया-मिस्वा-पैलैक्विअप*	
6)	*पर्वतीया शोला वन*	उच्च तुंगता
7)	*नदीतट/दलदली वन, मिरिस्टिका (चित्र 4)*	जलाक्रांत घाटी

चित्र 14 : *मिरिस्टिका* की फल सहित एक टहनी।

यद्यपि इन वनों में उत्तर पूर्वी भारत और अंदमान के वनों से भारी पारिस्थितिक समानता पाई जाती है तथापि अपने प्रजाति संघटन में ये बेहद भिन्न होते हैं। डिप्टेरोकार्पेसी इमारती वृक्ष कुल की 26 प्रजातियों में 13 सिर्फ पश्चिमी घाटी में ही पाई जाती है; कहीं और नहीं। इनमें से 4 अति स्थानगत स्थानिक प्रजातियां संरक्षण चिंता का विषय हैं। *होपिया जैकबी* नामक एक प्रजाति का पुनर्सग्रहण हुए पूरे 50 वर्ष बीत चुके हैं। ये प्रजातियां इमारती लकड़ी की गुणवत्ता को उन्नत बनाने के लिए बेहद महत्वपूर्ण आनुवंशिक स्टॉक का काम करती हैं।

जीनरा और प्रजाति: जीनरा वंश यानी जीनस का बहुवचन है। स्पिशीज यानी प्रजाति बहु और एकवचन में एक ही है। मानव, जिसे *होमो सेपियन्स* कहा जाता है में *होमो जीनस* है और *सेपियंस* है प्रजाति। ध्यान देने की बात यह है कि मानव के पूर्वजों का जीनस तो वही रहता है मगर सिर्फ प्रजाति ही बदलती है- *होमो इरेक्टस, होमो हैबिलिस, होमो कैनामेसिस*।

आइए अब इस प्रदेश को प्राणिजात पर दृष्टि डालें। इसके अपने स्थानिक प्राणिजात घटक होने के साथ-साथ, प्रायद्वीपी भारत में पाए जाने वाले अधिकांश कशेरूकी प्रजातियों की अच्छी खासी संख्या इसी प्रदेश में है। इस प्रदेश में न पाए जाने वाले विशाल स्तनधारी हैं तो सिर्फ गुजेल, ब्लैकबक और नीलगाय का शुष्क बोविड जंतु समूह, जो संबद्ध निम्न प्राणिजात के साथ अदृश्य रहता है। इसके साथ ही आद्र घासस्थलों के प्राणिजात, अनूपमृग (चित्र 15a) और अरान भैंस, यहां नहीं मिलते। कशेरूकी जंतुओं में, सभी समूहों के स्थानिग वर्ग पाए जाते हैं। उभयचरों में स्थानिक वर्गों का अनुपात असाधारण रूप से विशाल होता है - यानी जीनसों का आधा, और अधिकांश प्रजातियां स्थानिक होती हैं। स्थानिग वर्ग के रूप में अलवणजलीय मछलियां भी रूचि का विषय हैं और इनमें उत्तर पूर्वी भारत के वर्गों से सजातीयता पाई जाती है। भारतीय जीव भौगोलिक अवधारणा के विकास में 'होरा और सतपुरा सिद्धांत' के गढ़ने में इनकी बड़ी महती भूमिका रही है। अनेक सरीसृप और पक्षी प्रजातियां घाटों तक परिसीमित हैं। ट्रैवंकोर कच्छप और केन कछुआ ऐसे दो संकटापन्न वर्ग हैं जो मध्य-पश्चिमी घाट में एक छोटे से क्षेत्र में सिमटे हुए हैं। इस क्षेत्र को कूर्ग-ट्रैवेंकोर भी कहते हैं। इसी प्रदेश में 62 स्तनधारी जीनस हैं, जिसमें से एक जोकि एक कृतंक (rodent) है, स्थानिक है। जीवभौगोलिक रुचि के बंधनों के अनेक उदाहरण इस प्रदेश में है : जैसे ताहर के जरिए हिमालय के साथ उत्तर-पूर्वी भारत और श्रीलंका के साथ।

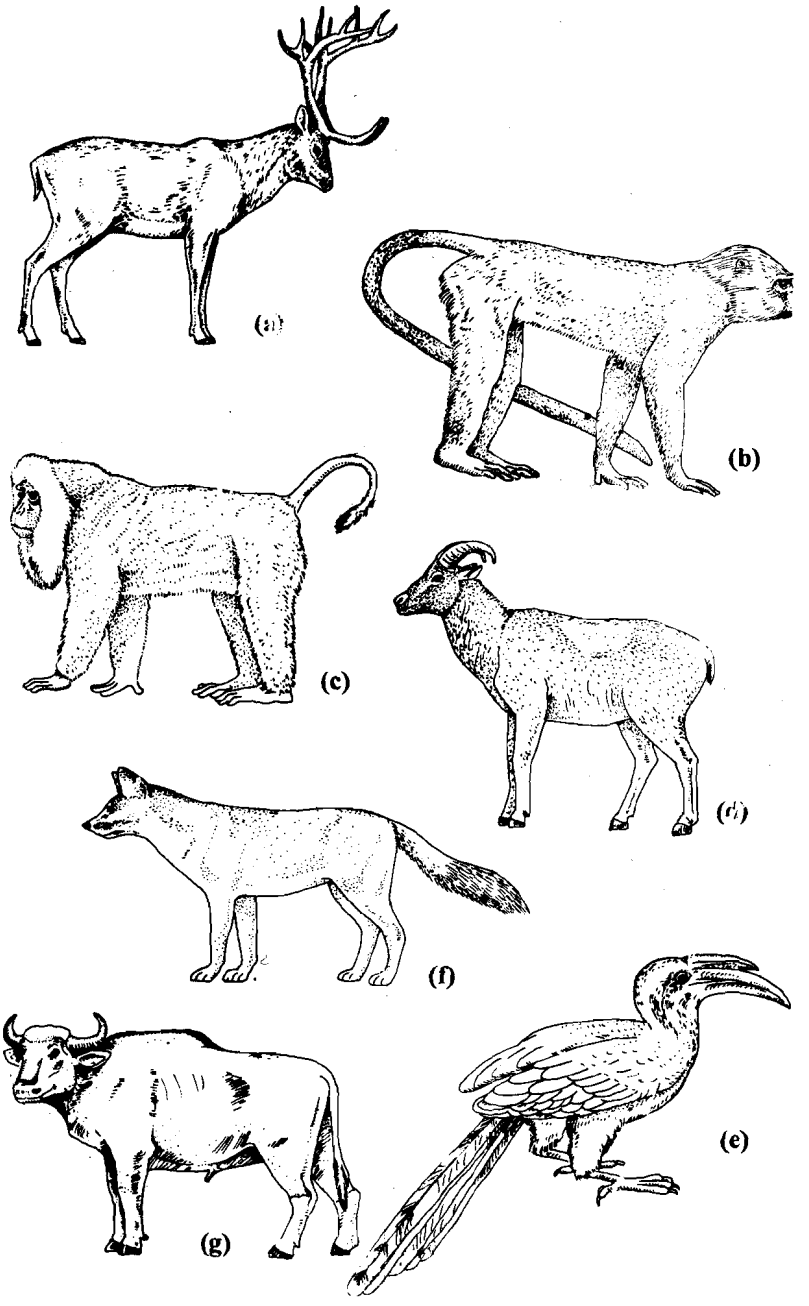

पश्चिमी घाट में ही पाई जाने वाली प्रसिद्ध प्रजातियां इस प्रकार हैं :

प्राइमेटों (primates) में - नीलगिरि लंगूर और सिंहपुच्छ वानर (चित्र 15b,c)

कृंतक (rodents) - प्लैटाकोंथेमिस और दक्षिणी घाट की कंटकी डोरमाउस।

गिलहरी (squirrels) - रैटुफा इंडिका की अनेक उपजातियां जिनके पृथक रूप महाराष्ट्र, मैसूर, मालाबार और तमिलनाडू के घाटों में मिलते हैं। भूरी गिलहरी तमिलनाडू के वनों में दो स्थानों तक सीमित हैं।

मांसाहारी (carnivores) - दक्षिण सदाबहार वन में मालबरी गंध बिलाव, उत्तरी पर्णपाती वनों में रस्टी स्पॉटेड कैट।

खुरदार (ungulates) - नीलगिरि ताहर (चित्र 15d) नीलगिरि से लेकर अगस्त्यमलै पर्वतीय घासस्थलों तक।

धनेश (Hoonbills) - मालाबार धूसरी धनेश (चित्र 15e) इन स्थानिक प्रजातियों के अलावा भी पाई जाने वाली अन्य प्रजातियां हैं : बाघ, धोले, (चित्र 15f) रीछ, हाथी और गौर (चित्र 15g)।

26.2.6 प्रदेश-6 : दक्षिण प्रायद्वीप

यह प्रदेश भारत में सबसे विशाल क्षेत्र में फैला हुआ है, जो संपूर्ण भूमि का लगभग 43% है और इसका क्षेत्रफल 1,421,000 वर्ग कि० मी० है। इस प्रदेश का एक बड़ा भाग यूं मानव द्वारा काफी बदल दिया गया है, किंतु इसमें कुछ वन क्षेत्र अब भी पाए जाते हैं, जैसे मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र और उड़ीसा में।

चित्र 15 : पश्चिमी घाट के प्राणिजात a) अनूप *(दलदल) मृग (सरेक्स इयुवौसेली);* नीलगिरी लंगूर *(प्रिसबाइटिस जॉनी),* सिंहपुच्छ वानर (Lion-tailed Macaque); नीलगिर ताहर *(हेमीट्रैगस हाइलाकायस);* मालबारी धूसरी धनेश (Malabar grey Hornbill) *(टोकुस बाइरोस्ट्रिस)* f) धोले *(कुऑन अल्पाइनस)* और गौर *(बॉस गौरस)*।

इस प्रदेश में पर्णपाती वन, कंटकी वन और अवनत झाड़ीदार वनस्थलियां पाई जाती हैं। पूर्वी घाट में अर्ध-सदाबहार वन और आंध्र प्रदेश और तमिलनाडू के मैदानों के समुद्रतटीय छोरों पर शुष्क सदाबहार वन या कंटकी कुंज पाए जाते हैं।

उत्तरी प्रदेश में साल और विशेषकर उत्तर-पूर्व में सागौन (चित्र 16) वृक्षों की बहुतायत वाले वन पाए जाते हैं जिनमें विविध प्रजातियां (*टर्मिनेलिया, ऐनोगाइसस, क्लोरोजाइलॉन*) भी मिलती है। प्रदेश के दक्षिणी अर्धभाग में शुष्क, कंटकी वन मिलते हैं जिनमें *ऐकैशिया, ऐलबिज्जिया ऐमारा* और *हार्डविकिया* का संबंध पाया जाता है। प्राकृतिक घासीय मैदान दुर्लभ हैं।

समूचे प्रदेश में प्राणिजात प्रजातियां व्यापक रूप से मिलती हैं, जैसे चीतल (चित्र 17a), सांभर, नीलगाय, चौसिंगा, भौंकू मृग (barking deer) और गौर। कुछ प्रजातियां जैसे ब्लैक बक शुष्क खुले क्षेत्रों तक सीमित पाई जाती हैं। प्रजातियों की लघु, अवशिष्ट आबादी भी मिलती हैं जैसे हाथी (बिहारी, उड़ीसा और कर्नाटक, तमिलनाडू) और अरान (जंगली भैंस) (उड़ीसा, मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र के मिलन स्थल के एक छोटे से इलाके में)। हार्ड ग्राउंड स्वैम्प डियर (अनूप मृग) अब मध्य प्रदेश के सिर्फ एक स्थान में ही सीमित होकर रह गया है। घड़ियाल गंगा में मिलने वाली कुछ नदियों और

महानदी के एक स्थल विशेष तक सिमट कर रह गया है। मांसाहारी जंतुओं में रस्टी स्पॉटेड कैट छुटपुट संख्याओं में मध्य भारत में ही मिलती है। भेड़िये असघन संख्याओं में शुष्क क्षेत्रों में देखे जाते हैं। बाघ, तेंदुआं, रीछ, गौर, सांभर, चीतल, चौसिंगा और जंगली सूअर विशेषकर पर्णपाती क्षेत्रों में उच्च घनत्व में मिलते हैं।

जहां तक वनस्पति जात घटकों की बात है, तो इस प्रदेश में कई रोचक विशेषताएं देखने में आती हैं। मध्य पर्वत श्रेणियां उच्च तुंगता पर उगने वाले शीतोष्ण वनस्पति जात के आरंभ का सूचक हैं। पूर्वी घाट कुछ स्थानिक रूपों की शरणस्थली है जिनमें पहाड़ी मैना (चित्र 7b) जैसे पक्षी, निम्न कशेरूकी और अकशेरूकी भी शामिल हैं। मूल्यवान स्थानिक पादप संसाधन जैसे रेड सैंडर और चंदन वृक्ष वन भी तत्काल संरक्षण चिंता का विषय है। इसी तरह नम सागौन, दक्षिणी और तटीय साल, अम्ब्रेला थार्न आदि प्रजातियां और विशेष रूप से अर्ध-सदाबहार समुदायों और शुष्क सदाबहार वन के संरक्षण के उपायों की भी आवश्यकता है।

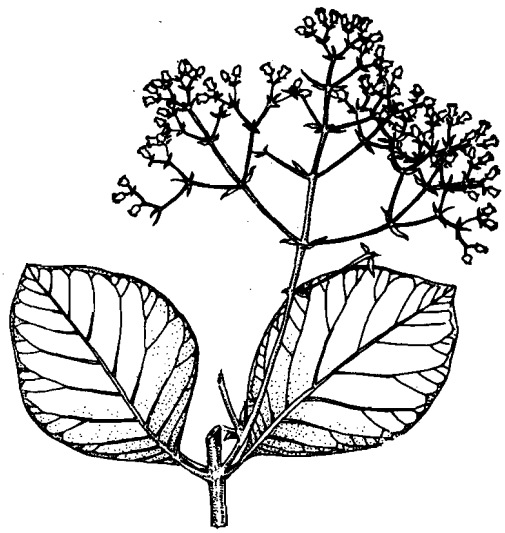

चित्र 16 : सागौन (*टेक्टोना ग्रैन्डिस*) की एक पुष्पी टहनी।

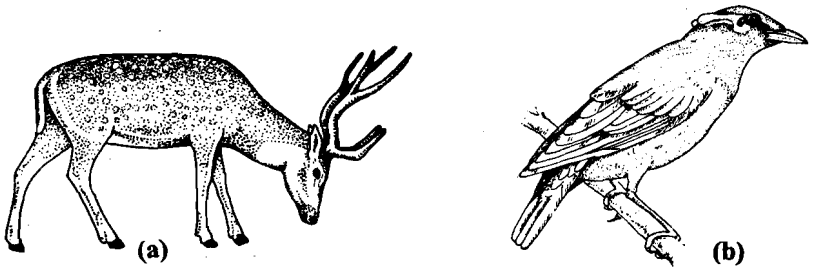

चित्र 17 : दक्षिण प्रायद्वीप में पाए जाने वाले चीतल (*ऐक्सिस ऐक्सिस*) और पहाड़ी मैना (*ग्रैक्यूला रिलिजियोसा*)।

26.2.7 प्रदेश-7 : गंगा का मैदान

इस प्रदेश में विश्व के सबसे उपजाऊ क्षेत्र हैं और यह एक घने और बढ़ती मानव जनसंख्या को संबल प्रदान करता है। यह लगभग 359,400 वर्ग कि० मी० क्षेत्रफल में फैला हुआ है। इसके अधिकांश भूभाग में पाई जाने वाली मूल वनस्पति अब लुप्त प्राय: हो चुकी है, क्योंकि इसके एक बहुत बड़े हिस्से में से खेती होने लगी है। एकमात्र प्राकृतिक वनस्पति और वन्यजीव इसके उत्तर में पाए जाते हैं - यानी शिवालिक पर्वतमालाओं और निकटवर्ती भबर तराई-दुआर पट्टी में। इस प्रदेश में भारी संख्या में झीलें और मौसमी दलदल पाए जाते हैं। इनमें प्राय: जलनिकास नहीं हुआ होता है। यह क्षेत्र प्रवासी जलमुर्गियों का आवास है।

गंगा के मैदान का वन्यजीवन

सदियों पहले यह वन्यजीवों से भरपूर था जिनमें मुख्य थे गैंडा, हाथी, भैंस और अनूपी मृग (स्वैंप डियर)। समय बीतने के साथ-साथ जैसे जैसे अधिकाधिक भूभाग में खेती बढ़ती गई इनकी संख्या घट गई और ये लुप्त हो गए। मगर इसके पश्चिमी क्षेत्रों में नीलगाय, ब्लैकबक और चिंकारा की छोटी अवशिष्ट आबदियां सघन कृषि क्षेत्रों के बीच अब भी पाई जाती हैं। उत्तर में स्थित तराई की घासस्थलियों में कुछ जगहों पर अनूपी मृग और पाढ़ों (Hogdeer) की आबादी मिलती हैं (चित्र 18a)। गैंडा, चरत (Bengal Floricon) दृढ़लोमी खरगोश पूर्वी तराई या दुआर में कम संख्या में पाए जाते हैं। सांभर-चीतल समुदाय भाबर के वनों में मिलता है, जिसमें गोरल खड़ी ढालों वाले जंगलों में पाए जाते हैं। कलीज फीजेंट के साथ ये प्राणिजात हिमालयी परिवेश में संक्रमण के आंरभ के सूचक हैं। जैसे कि

पहले बताया गया है, यह क्षेत्र प्रवासी जलमुर्गी का एक मुख्य शीतकालीन पोषण स्थल है, जो यहां असाधारण घनत्व और विपुलता में पाया जाता है। नमस्थलियों और नदियों में मगर और घड़ियाल की आबदियां, गंग-डाल्फिन (चित्र 18b) की अवशिष्ट आबादियां और अलवणजलीय कछुए की 20 प्रज़ातियों वाला एक विपुल समुदाय भी इस प्रदेश में मिलता है।

26.2.8 प्रदेश-8 : उत्तर पूर्वी भारत

उत्तर-पूर्वी भारत का यह प्रदेश भारतीय, भारत-मलय और भारत-चीनी प्रदेशों के बीच का एक संक्रमण प्रदेश है। साथ ही यह प्रदेश हिमालय पर्वतों और प्रायद्वीपी भारत का मिलन-स्थल है। अपनी विपुल जैव विविधताओं के कारण यह भारतीय उपमहाद्वीप के सबसे महत्वपूर्ण प्रदेशों में एक है। इसकी अनेकों प्रजातियां इसी क्षेत्र की स्थानिक हैं। सिर्फ पादप जातियों में ही यह विविधता नहीं बल्कि जंतुओं में भी ऐसी प्रजाति-विपुलता मिलती है जो दुनिया में अन्यत्र कहीं नहीं मिलती। यह प्रदेश लगभग 171,423 वर्ग कि० मी० के क्षेत्रफल में फैला हुआ है और इसमें आसाम, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, नागालैण्ड और त्रिपुरा राज्य आते हैं। इस क्षेत्र का 40% भाग वनों से घिरा है।

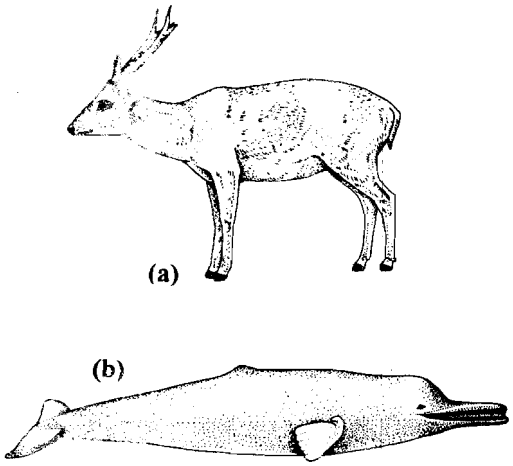

चित्र 18 : a) पाढ़ा (*ऐक्सिस पोर्सिनस*); b) गंगा डाल्फिन (*प्लैटेनिस्टा गैजेटिका*); जो गंगा के मैदान में पाए जाते हैं।

विविध आवास परिवेशों के साथ-साथ दीर्घकालिक भूगर्भी स्थिरता ने स्थानिक पादप और जंतु समूहों के विकास में योगदान किया है। उत्तर पूर्वी भारत की जैवविविधता में योगदान करने वाली कई प्रजातियां इस भूभाग तक सीमित है। या फिर वे छोटे-छोटे स्थानिक भागों, जैसे खासी पहाड़ियों में सिमटी पाई जाती हैं। एकमात्र उत्तर-पूर्व में ही वह मूल आवास है जो कभी उत्तरी भारत का उभय आवास हुआ करता था। इस प्रदेश में ब्रह्मपुत्र घाटी अपने में एक अनूठी प्राकृतिक वनस्पति को समेटे हुए है - अनूप (swamps) घासस्थलियां (grasslands) और सीमावर्ती वनस्थल तथा वन। विशेषरूप से इन घासस्थलियों में पाए जाने वाले विशाल प्राणिजात की पूर्ण विपुलता को यदि कहीं देखा जा सकता है वह इन भूभागों में। गैंडा, भैंसा, अनूपीमृग, पाढ़ा, बनैल (pygmy hog) और दृढ़लोमी खरगोश इसके प्राणिजात हैं। इसी क्षेत्र में हाथियों की सबसे बड़ी संख्या मिलती है। यह जल मुर्गी तथा अन्य पक्षियों का वायु मार्ग भी है जिससे होते हुए ये पक्षी शीत ऋतु में इस उपमहाद्वीप की उष्णता और साइबेरिया तथा चीन स्थित अपने ग्रीष्मकालीन अरण्यों के बीच सफर करती हैं। इस प्रदेश का जैव वैज्ञानिक अध्ययन काफी कम हुआ है और अनेक प्रजातियों की खोज और उनका वर्णन किया जाना अभी बाकी हैं। यहां विद्यमान कहीं अधिक उच्च कोटि की जैविक उपयोगिताओं के दस्तावेज-बद्ध किए जाने की भारी संभावनाएं हैं।

उत्तर-पूर्वी इकाईयों में पूर्व और दक्षिण-पूर्व की ओर भारत-चीन और भारत-मलय से बंधुता पाई जाती है। अनेक प्रजातियां उभयधर्मी हैं और एक भाग से दूसरे भाग में एक क्रमिक विनिमय देखने को मिलता है। स्वयं ब्रह्मपुत्र नदी जंतुओं के लिए नहीं बल्कि अनेक पादप प्रजातियों के लिए भी एक प्रकीर्णन अवरोध का काम करती है। उदाहरण के लिए स्वर्ण लंगूर (चित्र 19a), दृढलोकी खरगोश और बनैल इसके उत्तरी तट तक परिसीमित रहते हैं। उधर हूकू गिबन (Hoolock Gibbon) (चित्र 19b) और ठूंठ-पुच्छ वानर (Stump tailed macaque) इस नदी के दक्षिणी तट में परिसीमित मिलते हैं। सदाबहार वनों में प्रभावी वितानी वृक्ष *मेसुआ आसमिका* सिर्फ उत्तरी तट पर पाया जाता है तो *डिप्टेरोकार्पस मैक्रोकार्पस* और *शोरिया आसामिका* सिर्फ दक्षिण तट की ओर ही पाए जाते हैं।

आसाम की पहाड़ियों में विविधत की दो और प्रवणताएं विद्यमान रहती हैं : एक तुंगता प्रवणता और दूसरी वर्षा प्रवणता।

1) तुंगता प्रवणता जो मेघालय पठार के दक्षिणी पाद में 300 मीटर नीचे से लेकर 1960 मीटर पर स्थित मेघालय के उच्चतम तक वर्मा सीमा पर समूचे मणिपुर प्रांत में 3200 मीटर पर स्थित

उच्चतम बिंदु तक होती है। यह तुंगता परास उष्णकटिबंधी सदाबहार और अर्ध-सदाबहार वन, उष्णकटिबंधी आर्द्र पर्णपाती वन, उपोष्णी पर्वत वन और शीतोष्ण समुदायों को अपने में घेरे रहता है। मणिपुर की ऊंची चोटियों में पूर्णत: एक अर्ध-अल्पाइन झाड़ीदार वनस्पति देखने में आती है।

2) वर्षा प्रवणता खुले (अनावरित) दक्षिणी ढालों जैसे दक्षिण मेघालय में चेरापूंजी पर की 11,000 मि० मी० वार्षिक वृष्टि से लेकर 1,500 मि० मी० वार्षिक वृष्टि वाले आच्छादित वृष्टिछाया (rain shadow) के ढाल। स्थानिक प्रजातियों में मैग्नोलिएसी कुल के सदस्य पादप संक्रमित क्षेत्रों में उगते हैं, तो बाल्सीमिनेसी व्यापक रूप से वितरित मिलते हैं।

मेघालय अपने वानस्पतिक महत्व के लिए प्रसिद्ध है, जिनमें अधिकांश शिलौंग-चेरापूंजी के पठारी भूभागों के उच्च तुंगता वाले बांज वन हैं। त्रिपुरा-मिजोरम सीमा के समीप के भूभाग में वन्यजीव प्रजातियों की असाधारणा विविधता पाई जाती है, जिसमें चार दुर्लभ प्राइमेट (नरवानर) प्रजातियां भी वास करती हैं। ये है हूकू गिबन, पर्णवानर और सूकर-पुच्छ तथा ठूंठ पुच्छ वानर।

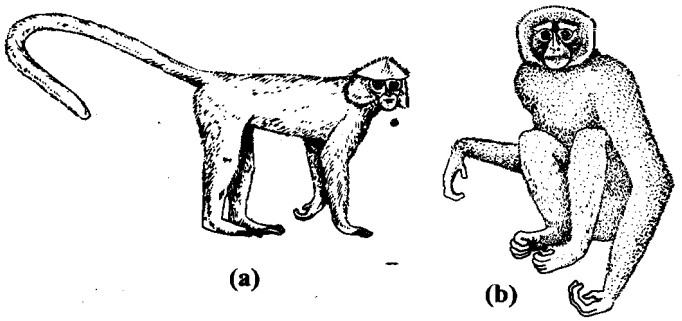

चित्र 19 : उत्तर पूर्व भारत में पाए जाने वाले a) स्वर्ण लंगूर (*निक्टिसीबस कौकैंग*); और b) हूलॉक गिबन (*हाइलोबेटीज हूलॉक*)।

26.2.9 प्रदेश-9 : द्वीप

जीव भौगोलिक प्रदेशों की इस श्रेणी में हम बंगाल की खाड़ी में अंडमान निकोबार द्वीपसमूह और अरब सागर में लक्षद्वीप के बारे में बताएंगे।

अंडमान और निकोबार उत्तर-दक्षिण दिशा में फैले 348 द्वीपों का समूह है। इनका एकल भू क्षेत्रफल लगभग 8,327 वर्ग कि० मी० है और ये 590 कि०मी० तक फैले हैं। अंडमान द्वीप बर्मा-भारत तट से छिछले महाद्वीप समुद्र द्वारा अलग हैं। निकोबार मुख्य भूमि अंडमान और भीतर से लगभग 800 मीटर गहरे जलमार्गों द्वारा एक दूसरे से पृथक रहते हैं। ये द्वीप दरअसल बर्मा की अराकन पर्वतमाला का विस्तार हैं और नर्कोडम द्वीप ज्वालामुखी हैं और ये अभी भी सक्रिय समझे जाते हैं। अंडमान द्वीप बर्मा के साथ बंधुता दशति हैं, उधर सुमात्रा से मात्र 90 कि०मी० दूर निकोबार द्वीपों में दक्षिण-पूर्व एशिया से बड़ी ही जीव भौगोलिक घनिष्ठता पाई जाती है। अंडमान और निकोबार द्वीप भारत के तीन उष्णकटिबंधी आर्द्र सदाबहार वन प्रदेशों से बंधन दशति हैं। इनके वनस्पति एवं प्राणिजात, जो कि भारत में कहीं अन्यत्र नहीं मिलते, कई प्रकार से अनूठे हैं।

अंडमान और निकोबार द्वीपों का वन्यजीवन

वन्यजीवन की बात करने से पहले, संक्षेप में हम इसके जीव भौगोलिक स्थलों के बारे में जान लें। अंडमान द्वीपसमूह में 6,491 वर्ग कि०मी० क्षेत्रफल में फैले 324 द्वीप शामिल हैं। इनका अधिकांश क्षेत्र 'महा अंडमान' ने घेर रखा है, जो द्वीपों का बना है। ये द्वीप संकरी खाड़ियों द्वारा एक दूसरे से पृथक रहते हैं। ये हैं : उत्तर, मध्य, दक्षिण अंडमान तथा बारतांग और रटलैंड द्वीप। लिटिल अंडमान दक्षिण से कुछ दूरी पर है। निकोबार समूह कुछ छोटा है जिसमें सिर्फ 24 द्वीप हैं। इसमें तीन उपखंड है : उत्तरी समूह के टेरेसा, तिलंगचोंगे कमोर्ता और लिटिल निकोबार व ग्रेट निकोबार।

इस प्रदेश में एक अनूठे किस्म का पादप और जन्तु जीवन है, जो भारी स्थानिकता दर्शाता है। इन द्वीपों का स्तनधारी प्राणिजात काफी कम संख्या में पाया जाता है। इसका मुख्य कारण अंडमान और निकोबार द्वीपों का पार्थक्य तथा उनका छोटा आकार हो सकता है। स्तनधारी जंतुओं में कृंतकों और चमगादड़ों की प्रधानती रहती है। सैकड़ों वर्ष पहले, इन द्वीपों में सूअर लाए गए थे, अब इन्हें 'अंडमान सूअर' कहते हैं। इनके अलावा, चित्तिदार मृग, पाढ़ा, भौंकू मृग (बार्किंग डियर), बकरियां, हाथी, सांभर, तेन्दुआ और ताड़-गंधमार्जार (चित्र 20a) आदि कुछ अन्य प्रजातियां भी यहां विद्यमान हैं, इनमें से कुछ प्रजातियां इन द्वीपों में खूब फल-फूल रही हैं, ऐसा विश्वास है कि ये इन द्वीपों की मूल प्राणिजात को कम कर रही हैं, जिसमें हैं जमीन में घोंसला बनाने वाली पक्षी और साधारण चूहा। देशज स्तनधारी प्रजातियां, जिनका संरक्षण आवश्यक है, उनमें शामिल हैं निकोबारी वानर जिसे केकड़ा-भक्षी वानर भी कहा जाता है और व्यापक रूप से पाया जाने बाला दीर्घ-पुच्छ वानर की एक विशिष्ट नस्ल, निकोबारी वृक्ष छुछुंदर और अंडमान निकोबार के तट से लगे समुद्र में साधारणतया पाया जाने वाला डुगोंग (चित्र 20b)।

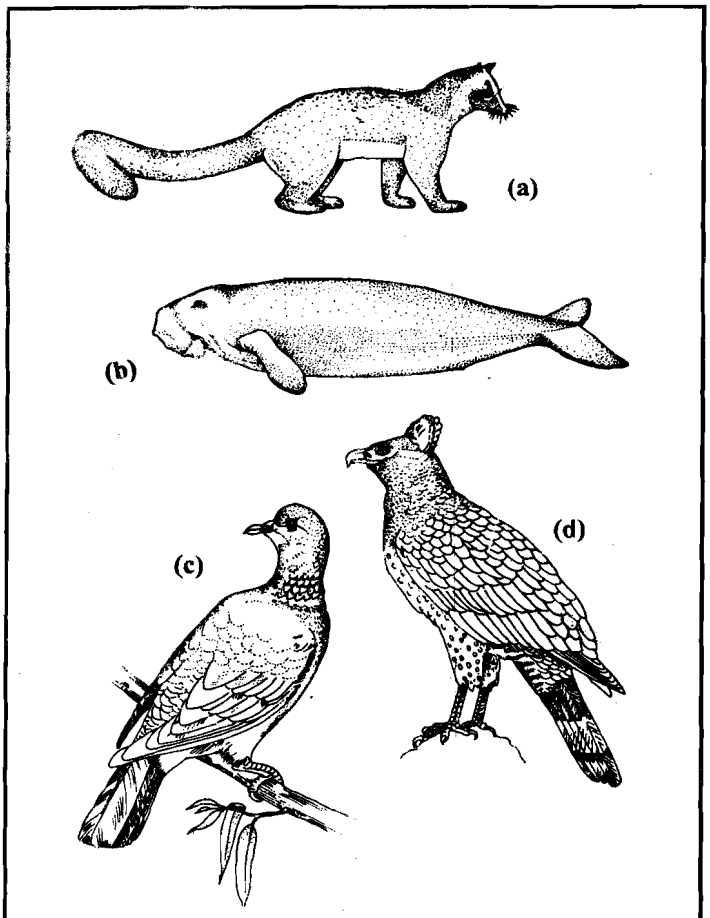

चित्र 20 : अंडमान और निकोबार द्वीपों के कुछ प्राणिजात। a) ताड़गंधमार्जार (*पैग्यूमा बार्बेटा*); b) डुगोंग (*डुगोंग*); c) अंडमान वन कबूतर (*बा एलिफन्स्टोनाइ*); और सृप उकाब (*स्पिलोर्निस चीला*)।

पक्षीजात में पक्षियों के 225 विशिष्ट वर्ग हैं जिनमें से 112 इन द्वीपों की स्थानिक हैं। कुछ विचित्र उदाहरण हैं टीला बनाने वाला पक्षी जो बलुई तटों और वेलांचली वनों में पाया जाता है और निकोबार मेगापोड। यह अति संकटापन्न है। एक और रोचक स्थानिक पक्षी प्रजाति नार्कोन्डम धनेश हैं, जो अंडमान के पूर्व में स्थित 7 वर्ग कि० मी० क्षेत्रफल वाले ज्वालामुखीय द्वीप नार्कोन्डम में ही पाई जाती है। सृप उकाब तथा अंडमान या धूसरी हंसक ('Andaman's or Grey Teal), जो कि खारे तथा अलवण वन तालाबों में पाई जाने वाली यूथी बत्तख है, अंडमान द्वीपों तक परिसीमित हैं और ये अत्याधिक संकटापन्न है। यह देखने में आया है कि कई स्थानिक प्रजातियां 'सघन सदाबहार वनों' तक ही सीमित रहती हैं जैसे निकोबारी कबूतर, अंडमानी वन कबूतर (चित्र 20c), निकोबारी टुइयां तोता, निकोबारी किरीटी सृपी उकाब (चित्र 20d)। इन स्थानिक प्रजातियों के संरक्षण के लिए इनके मूल आवास स्थलों का तत्काल सुरक्षित करने की आवश्यकता है।

चित्र 21 : अंडमान और निकोबार द्वीप समूह की दो ऑर्किड प्रजातियां a) *एरिडीज एमिरिसी* : b) फेलीनोसिस स्पीसियोसा।

सरीसृप और एमफीबिया : सरीसृपों और उभयचरों की अनेक प्रजातियां इन द्वीपों में स्थानिक हैं। इनमें कई प्रजातियों की खोज अभी तक नहीं हुई है और इन पक्षियों में अनेक की आचरण पारिस्थितिकी को समझा जाना बाकी है। कुछ रोचक सरीसृप और उभयचर प्रजातियों में खारे जल का मगर है जो अब उत्तरी मध्य और लिटिल अंडमान तथा ग्रेट निकोबार और कुछ तटपार द्वीपों की कुछ संकरी खाड़ियों तक ही सिमट कर रह गया है। इन द्वीपों में समुद्री कछुए की चार प्रजातियां पाई जाती हैं - हरा रिड़ले, हॉक्स बिल और लैदरी। इनमें से लैदरी कछुए का भारत में एकमात्र बसेरा इस समय निकोबार द्वीपों के समुद्र तट हैं। अधिकांश हॉक्स बिल कछुओं के नीड़न स्थल और लगभग आधे हरे कछुओं (Green

turtles) का नीड़न स्थल अंडमान और निकोबार द्वीप समूहों में ही है। छोटी-छोटी संख्या में पाया जाने वाला एशियाटिक बॉक्स टर्टल, जो कि एक अलवणीय कछुआ है, की संख्या में भारी कमी भी चिंताजनक है। मत्स्य और प्रवाल: अंडमान और निकोबार द्वीप नाना प्रकार की तटीय विविधताएं दर्शाते हैं जैसे अगरान नदमुख, बलुई और पंकिल समुद्रतट, प्रवाल भित्तियां (coral roofs), लैगून (lagoon) और समुद्री भृगु (marine cliff) । ऐसा कहा जाता है कि भारत के इन जल क्षेत्रों में सबसे अधिक मत्स्य और प्रवाल पाए जाते हैं। इसके अतिरिक्त यहां व्हेल एवं डल्फीन की अनेक प्रजातियां अक्सर देखने में मिलती हैं।

पादप : भारत में पाई जाने वाली पुष्पी पादपों की 15,000 प्रजातियों में कोई 2,200 प्रजातियां इन द्वीपों में मिलती हैं (चित्र 21 में ऐसी दो पादप प्रजातियां दिखाई गई हैं)। इनमें से 200 तो केवल स्थानिक हैं। शेष में 1,300 प्रजातियां भारत में अन्यत्र कहीं नहीं मिलतीं और ये प्रजातियां बर्मा, मलेशिया और इंडोनेशिया भूभागों की प्रजातियों से निकटता प्रदर्शिती करती हैं। इसका यह मतलब है कि भारत की 15,000 पुष्पी पादप प्रजातियों का लगभग 10 प्रतिशत 8,000 वर्ग कि०मी० क्षेत्र में फैले अंडमान-निकोबार के वनों तक ही परिसीमित है। इस भाग के वन आवरण के विस्तार पर उपलब्ध गहन आंकड़ों से यह निराशाजनक बात उजागर होती है कि पिछले 100 वर्षों में यह आधा रह गया है। इस दर से आने वाले समय में लगभग 400 प्रजातियां यानी 20 प्रतिशत अदृश्य हो जाएंगी। याद रहे कि ये प्रजातियां भारत में अन्यत्र नहीं मिलती।

चैम्पियन और सेठ*(1968) के अनुसार इस प्रदेश में विद्यमान वनीय वनस्पति की सात श्रेणियां इस प्रकार हैं : सदाबहार वन, अर्ध सदाबहार; पर्वत शिखर, वृद्धिरूद्ध सदाबहार वन, आर्द्र पर्णपाती वन, अनूप वन और गरान वन। इसके अलावा कुछ वनेतर पादप समुदाय भी समुद्र तट पट्टियों में - अलवणजलीय पोखरों और चट्टानी भूगुओं - में पाए जाते हैं। ज्वालामुखीय बैरन द्वीप में घास-कुंज स्थलियों का आवरण पाया जाता है। छोटे द्वीपिकाओं में घासीय-टहनी वाले दृढ़पर्णी कुंज पाए जाते हैं। अंडमान की अनेक प्रजातियों में बर्मा और उत्तर-पूर्वी भारत से बंधुता देखने में आती है। डिप्टेराकार्पेसी एक ऐसा उदाहरण है जिसकी प्रजातियों में इसकी दक्षिण भारतीय किस्मों से कोई बंधुता नहीं दिखाई देती।

निकोबार की इंडोनेशिया से बंधुता है। इन द्वीपों में डिप्टेरोकार्पस तो नहीं पाया जाता, मगर इनमें वृक्षी-पर्णांग और ताड़ वृक्षों की भारी विविधता पाई जाती है। ग्रेट निकोबार का ऑर्किड वनस्पतिजात इन द्वीपों की इंडोनेशिया से बंधुता को पुष्ट करता है। अब तक दर्ज 36 प्रजातियों में 21 इस भूभाग के अलावा भारत में कहीं और नहीं पाई जाती है। इनमें से 20 प्रजातियों वनों में ही वास करती हैं और शेष एक प्रजाति वनाच्छादित पहाड़ियों की चोटियों पर स्थित खुले चट्टानी घास स्थल में पाई जाती है। अंडमान द्वीपों के विपुल जैविक संसाधन, पोर्ट ब्लैयर में भारतीय वानस्पतिक और प्राणि सर्वे के स्थायी फील्ड स्टेशन स्थापित करने का मुख्य कारण रहे हैं।

लक्षद्वीप समूह या अरब सागर द्वीप

ये द्वीप कोई 25 द्वीपिकाओं के बने हैं, जिनके मुख्यत: तीन समूह हैं : उत्तर में अमीनदीवी द्वीप, मध्य में लक्काद्वीव या कैननोर द्वीप और दक्षिण में स्थित लगभग 175 कि०मी० लंबा एक अकेला द्वीप मिनिकॉय द्वीप। ये द्वीप प्रवाल मूल के होते हैं और इनमें प्रवालभित्ति लैगून का एक विशिष्ट तंत्र पाया जाता है। इनका पूरा भू क्षेत्र लगभग 109 वर्ग कि०मी० हैं, जिसमें भित्ति, शलाका और द्वीपिकाएं शामिल हैं। इनमें से सिर्फ 10 द्वीपों में स्थायी मानव बस्तियां हैं, जिनमें 25,000 लोग बसे हुए हैं। यहां जनसंख्या का घनत्व 870 व्यक्ति प्रति वर्ग कि०मी० है। अब अधिकांश द्वीपों में नारियल की खेती होती है, सो प्राकृतिक वनस्पति बहुत कम ही बची रह गई है। इन भंगुर पारिस्थितिक तंत्रों को पर्यावरण संबंधी जो मुख्य खतरे हैं वे हैं : एक सीमेंट कारखाने का निर्माण, जिसमें जीवाश्म प्रवाल भित्ति का चूना-पत्थर प्रयोग होगा, तटीय क्षेत्रों में व्यावसायिक स्तर पर मछली पकड़ने का काम और स्थानीय

*एच०जी० चैम्पियन के एस.के.सेठ 1968 : फॉरेस्ट टाइप्स ऑफ इंडिया, भारत सरकार प्रेस, नई दिल्ली

संसाधनों के लिए पर्यटन की बढ़ती मांग।

कुछ छोटे द्वीप एक अनूठी पांडानुस-कैसुअरिना की प्रवाल भित्तियों में अभितटीय समुद्री परिस्थितिकी तंत्रों के ऐसे कई उदाहरण हैं, जिनके संरक्षण की तत्काल आवश्यकता है। छिछले समुद्री लैगूनों में समुद्री आवृतबीजी पादपों से निर्मित चरागाह पाया जाता है। जो डुगोंग के भरण स्थल हैं। ये द्वीप कच्छपों के लिए भी प्रमुख भरन-स्थल हैं, ओर इनमें हरे कछुओं के कुछ नीड़न स्थल भी पाए जाते हैं। समुद्री पक्षियों की अनेक प्रजातियों के नीड़न-स्थल निर्जन द्वीपीकाओं में पाए गए हैं जैसे : बभ्रु-पंखी गंगचील, नॉडीगंगचील, श्वेतगोपक नॉडी गंगाचील, लघु-किरीटी गंगाचील और कज्जली गंगचील। कुछ समुद्री पक्षी इतने विचित्र हैं कि अपने नीड़न-स्थल के लिए इन्होंने सिर्फ दो ही द्वीपिकाओं को चुना हैं। ये हैं पिट्टी और बलियापानी। इन पक्षियों के अंडों के संग्रहण पर प्रतिबंध लगा होने के बावजूद भी लोग यह कार्य कर रहे हैं।

26.2.10 प्रदेश-10 : समुद्र तट

भारत में एक विस्तृत समुद्र तट है जो 5689 कि०मी० तक फैल हुआ है (श्रीनिवास, 1969)*। पश्चिम में अरब सागर, गुजरात, महाराष्ट्र, गोवा, कर्नाटक और केरल राज्यों के तटों को स्पर्श करता है। पूर्व में बंगाल की खाड़ी, पश्चिम में बंगाल के सुंदरवन, उड़ीसा, आंध्र प्रदेश और केरल राज्यों को स्पर्श करती है। भारतीय प्रायद्वीप के दक्षिणी उच्चांतरीय (promontory) को मनार की खाड़ी भिगोती है और तमिलनाडू के दक्षिणी भागों के तटों को हिंद महासागर को स्पर्श करता है।

समुद्रतटों का वन्यजीवन

समुद्र तटों का भूविज्ञान बेहद विविध है और इसी के अनुसार पांच समुदाय बताए जाते हैं :

a) गरान - इनमें समुद्रोन्मुखी से लेकर स्थलोन्मुखी तरह-तरह के समुदाय पाए जाते हैं। ये नंदमुखी लैगूनों और डेल्टा प्रदेशों के आमने सामने मिलते हैं।

b) बालू समुद्र तट - इनमें उत्थित समुद्रत्ट और विशिष्ट पादप समुदाय सम्मिलित हैं जैसे *कैसुअरिना-कैलोफाइलम-पांडानुस*।

c) पंक मैदान - इनमें विभिन्न अनुक्रमिक चरणों से लेकर पूर्णत: स्थलीय वनस्पति की एक श्रेणी मिलती है।

d) उत्थिल प्रवाल और शैलीय तट रेखाएं।

e) समुद्री आवृतबीजी चरागाह।

तटीय वन्यजीव की कुछ रोचक प्रजातियां इस प्रकार हैं : डुगोंग, नदमुख के आविल सागर की कुबड़ी डॉल्फिन; नदमुख या लवणजलीय मगर; ओलिव रिडले, हरे हाक्सविल लैदरी और लॉगरहैड समुद्री कच्छप; नदमुख कच्छप - सुदंरवन के *बटागुर बैस्कर* और विशाल मृदुखोली नदमुख कछुआ; उत्कल - बंगाल तट की मछली *पेलोलिस बर्बोनी;* पंकलंधी (mudskippers) या अर्धस्थलीय गोबी, एनीमोन के साहचर्य में लघु केकड़े; गुरान के पक्षेजात समुदाय, मंक मैदान और लैगून। गरानों के उच्च क्षेत्रों में चित्तिदार मृग (spotted deer), सूअर गोह (monitor lizard), बंदर और सुंदरवन बाघ।

भारत में विश्व के सबसे अच्छे गरान अनूप मिलते हैं, देश में गरानों का बड़ा क्षेत्र पश्चि बंगाल के सुंदरवन में स्थित है, जिसका क्षेत्रफल 4,200 वर्ग कि०मी० है। मुख्य गरान प्रजातियां हैं *ऐवीसीनिया ऑफिसिनैलिस, एक्यिोकैरिया ऐगलोचा, हेरिटिएगा फोर्मीस, राइजोफोरा म्यूक्रोनैटा* (चित्र 22a) *जाइलोकार्पस ग्रैनेटम*। इस क्षेत्र में अनेक मोलस्क, पॉलिकीट और मधुमक्खियां भी पाई जाती हैं। गुजरात, महाराष्ट्र, गोवा, कर्नाटक और केरल राज्यों में पश्चिमी तटीय भागों में पाई जाने वाली प्रजातियां इस प्रकार हैं : *ऐवीसीनिया, मैरिना, ऐ० ऑफिसिनैलिस, सीरियोप्स टैगल, सैल्वाडोरा प्रेसिका*

* के०एस० श्रीनिवास, 1969, फाइकोलॉजिका इंडिका खंड I-II बाटैनिकल सर्वे ऑफ इंडिया, कलकत्ता।

(चित्र 22b), *राजोफोरा, म्यूक्रोनैटा, सोनरेशिया, एल्बा, एकान्थस, इलिकोल्यिस* और *हेरिटिएरा लिटोरैलिस*। पूर्वी तट पर उड़ीसा, आंध्र प्रदेश और तमिलनाडु राज्यों में भी तटीय गरान मिलते हैं। इस भाग में प्रमुख प्रजातियां है *बुगुइएरा सिलंड्रिका, बी०पैरवीफ्लोरा, राइजोफोरा, म्यूक्रोनैटा, फीनिक्स, पामोसा, ऐवीसीनिया ऑफिसिनैलिस, ऐ०मैरीना और सीरियोप्स टैगल*। इसके अलावा तटों में अनेक किस्म के पादपप्लक (phytoplanktons) और समुद्री शैवाल भी पाए जाते हैं (चित्र 23 में दो रूप दिखाए गए हैं)।

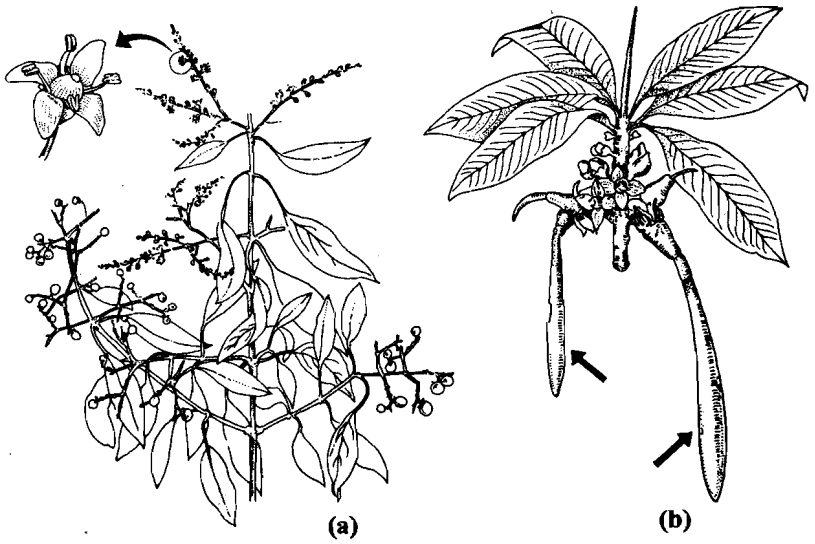

चित्र 22 : भारतीय तटवर्ती भागों में सामान्यतया पाए जाने वाले पापद a) *सैल्वाडोरा प्रेसिका* की टहनी, इसे 'पीलू' के नाम से जाना जाता है। b) *राइजोफारो* प्रजाति। मातृ पादप पर ही अंकुरित दो पादप कों (तीर के चिह्न) को ध्यान से देखिए।

तटों के प्रवाल भित्तियां का संबंध है। इन्हें हम तटीय पारिस्थितिकतंत्र का ही एक अंग मान कर चलेंगे। प्रवाल भित्तियों का निर्माण आश्मिक प्रवाल पॉलिपों के कैल्सियमी कंकालों से होता है। इन पॉलिपों में प्रवाल वास करते हैं जो कोमलकायी, अरीय सममित समुद्री कशेरूकी जीव हैं। एक निवह के प्रत्येक प्रवाल को पॉलिप कहते हैं। हजारों लाखों वर्षों तक ऐसे लाखों प्रवाल कंकालों के सामूहिक दृढ़ीभवन के फलस्वरूप इन प्रवाल भित्तियों की रचना होती है। ये भित्तियां अक्सर बहुत गहरे तक जा पहुंचती हैं और एक बार में सैकड़ों किलोमीटर दूर तक फैली रहती हैं। प्रवाल भित्तियों में भी विपुल जैव-विविधता देखने को मिलती है।

कई किस्म की मछलियां जिन्हें प्रवाल भित्ति मत्स्य भी पुकारा जाता है भी इस आवास में पाई जाती है।

प्रवाल भित्तियों को मुख्य तीन प्रकारों में बांटा गया है :

i) तटीय प्रवाल भित्तियां सबसे सामान्य प्रकार है। ये तट से समुद्र की ओर निकलती हैं और द्वीप को और महाद्वीपीय भूखंड को घेरे रहती हैं। ii) रोधिका प्रवाल भित्तियां, जो तटीय प्रवाल भित्तियां की तरह तो होती हैं मगर छिछले लैगूनों द्वारा भूखंड से पृथक रहती हैं। iii) प्रवाल द्वीप वलय या अडल सामान्य रूप से

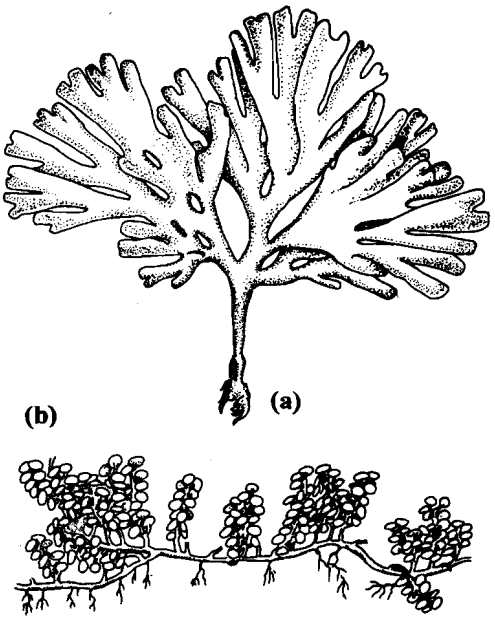

चित्र 23 : प्रचुर मात्रा में उगते शैवाल तटीय वनस्पति का एक बड़ा भाग है। a) *स्टीकोस्पर्मम मार्जिनैटम* : b) कौलैर्पा पेल्टैटा।

हिन्द-प्रशांत क्षेत्र में पाए जाते हैं। ये जल-निमग्न ज्वालामुखियों के शिखर पर पाए जाते हैं और प्राय: अंडाकार या वृत्ताकार होता है और इनके बीच में एक लैगून मिलता है।

बोध प्रश्न 1

1) वनस्पति और वन्यजीवन शब्दों की व्याख्या दीजिए।

.....

.....

.....

.....

2) दो ठोस कारण दीजिए जो यह बताते हों कि वन्यजीवन और वनस्पति शब्दों का प्रयोग प्रसंग एक दूसरे से भिन्न है।

.....

.....

.....

.....

3) जीव भौगोलिक प्रदेश किसे कहते हैं ?

.....

.....

.....

.....

4) नीचे दी गई तालिका को पूरा करें :

क्रमांक	हमारे देश के जीवभौगोलिक प्रदेश	भौतिक स्थितियां

26.3 वन्य जीवन का महत्व

इस पाठ्यक्रम की इकाई-4 के उप-अनुभाग 4.5.2 में आप जैवविविधता के महत्व के बारे में पढ़ चुके हैं। आपको याद होगा कि जैव-विविधता हमें अपने आस-पास दिखाई देने वाले नाना किस्म के जीवन रूप हैं। इस विविधता में प्रजातियों में, प्रजातियों के बीच और पारिस्थितिक तंत्रों में पाई जाने वाली विविधता सम्मिलित है। यह शब्द संपूर्ण विश्व के संदर्भ में भी प्रयुक्त होता है। जैवविविधता में वन्य तथा संवर्धित दोनों प्रकार की प्रजातियां आती हैं। वन्यजीव प्रजातियों की संख्या चूंकि संवर्धित प्रजातियों से कई गुना अधिक है इसलिए उपरोक्त संदर्भ में हुई चर्चा को वन्यजीवन के लिए माना जाना चाहिए। संक्षेप में इतना दोहरा लेना पर्याप्त होगा कि जैवविविधता का भारी आर्थिक महत्व हैं। वनों से व्युत्पन्न इमारती लकड़ी, गोंद, रेजिन, तेल, मोम, रंजक और रबड़ जैसे अनेक उत्पादों की भारी वाणिज्यी उपयोगिता है। कई जनजातियों जैसे वनवासी लोग भोजन, चारे और यहां तक कि मनोरंजन के लिए वन्यजीवन पर आश्रित रहते हैं। एक महत्वपूर्ण बात यह है कि अनेक वन्य प्रजातियों की औषधीय उपयोगिता है और अनिगिनत प्रजातियों का संभाव्य-उपयोगिताओं का दोहन किया जाना अभी बाकी है। वन्यजीवन जीनपूल का भी कृषि के क्षेत्र में अत्यधिक महत्व है। वन्य से प्राप्त अनेक जीनों से फसलों को उन्नत बनाया गया है। वन्यजीवन का एक और पक्ष रखे बिना इनकी बात अधूरी रह जाएगी, जो कि मानव के लिए सौंदर्य, अचरज, आनंद और मनोरंजन का एक प्राकृतिक स्रोत है। शरतकाल मे पत्तों का रंग बदलते देखना, वनफूलों की सुगंध लेना और कभी कुछ ऊंचाई में जुंबिश लेती चील को निहारना जैसे कई सुखद अनुभव हैं, जिन्हें आप शब्दों में बयान नहीं कर सकते। न ही ये अनुभव आप पैसे से खरीद सकते हैं। फिर सर्वोपरि बात तो यह है कि वन्यजीवन का हमारी पारिस्थितिकी में भारी महत्व है। प्रत्येक प्रजाति अन्य प्रजातियों के साथ पारस्परिक-क्रिया करती है और पारिस्थितिक तंत्र के भीतर तथा बाहर ऊर्जा व द्रव्यों के अंतरण में भूमिका निभाती है। इसलिए प्रत्येक प्रजाति अपने तरीके से पारिस्थितिक तंत्र को स्थायित्व प्रदान करने में अपना योगदान करती है। यदि कई प्रजातियों का लोप हो जाए तो विविधता में ह्रास हो जाता है। इसके फलस्वरूप पादप और जंतु-संख्याओं पर नाना प्रकार के नियंत्रण और संतुलन भी कम हो जाते हैं। प्रजातियों का विलोप हो जाने पर परभक्षण, परजीविता व स्पर्धा का स्थायीकारी प्रभाव भंग हो जाता है। फलत: पारिस्थितिक तंत्र ऐसी विघ्न-बाधाओं के प्रति संवेदनशील हो जाता है जो कभी-कभी इसके विनाश का खतरा बन जाती है।

इस प्रकार वन्यजीवन का महत्व निस्संदेह असीम है। इतना ही महत्वपूर्ण है प्राकृतिक अवस्था में इसका संरक्षण। वन्यजीवन के बिना मानव जाति के अस्तित्व की कल्पना भी मुश्किल है। यदि आप भारत के इतिहास पर दृष्टि डालें तो आप आश्चर्य में पड़ जाएंगे आज से 2000 वर्ष पूर्व भी भारतवासी वन्यजीवन के महत्व को अच्छी तरह से समझते थे। यही कारण है कि उनमें अपने आसपास के जीवों के प्रति दया थी और वे प्रकृति का आदर किया करते थे।

सड़कें

किसी पर्यटन-स्थल तक पहुंचने के लिए सड़कों का निर्माण अति महत्वपूर्ण है। सड़कों का निर्माण ऐसे क्षेत्र को काट-साफ करके किया जाता है जो कई प्रजातियों का आवास हो सकता है। ये प्रजातियां अंतत: उस क्षेत्र से अपदस्थ हो जाती है। इस तरह सड़क बिछाने के सीधा परिणाम अंतत: आवास में खलबली और उसका नाश है। एक ओर सड़कें जहां हमारी आवश्यकताएं हैं, वहीं दूसरी ओर से पर्यटन-स्थलों में जनसंख्या आधिक्य का कारण बन गई हैं। इसका सटीक उदाहरण बद्रीनाथ है। सन् 1967 में इस तीर्थस्थल ने 40,000 पर्यटकों को आकर्षित किया था। इसके सड़क से जुड़ते ही एक वर्ष के भीतर यानी 1968 में यहीं संख्या तीन गुना उछलकर 1, 25,000 पहुंच गई थी। आज इस चंया की क्या बात करें, जो अब लाखों में है। सड़क ने गंगोत्री यात्रा को सुगम तो बना दिया है, लेकिन इसने समीप के जंगल को नष्ट करने के साथ-साथ उस क्षेत्र की पारिस्थिकी और प्राकृति सौंदर्य को भी भारी क्षति पहुंचाई है।

संकटापन्न प्रजातियों की सूची : संकटापन्न घोषित प्रजातियों को निजी संगठनों ने सूचीबद्ध किया है। 'रेड डेटा बुक' ऐसी ही एक सूची है जिसका उल्लेख आजकल काफी हो रहा है। यह विभिन्न किस्मों की प्रजातियों की स्थिति पर जानकारी देने वाली खुले पन्नों वाली ग्रन्थमाला है। इस ग्रंथ को नियमित रूप से नवीनतम जानकारियों से लैस किया जाता है, जिसे प्रकृति संरक्षण के अंतरर्राष्ट्रीय संगठन - इंटरनेशनल यूनियन फॉर कंजरवेशन आफ नेचर एण्ड नेचुरल रीसोरसीज (IUCN) जारी करता है। यह संगठन मोर्गेस, स्विटजरलैंड में स्थित है। रेड यानी कि लाल वस्तुत: उस खतरे का सूचक है, इसमें दर्ज पादप और जंतु प्रजातियां मौजूदा समय में समूचे विश्व में जिससे गुजर रही है। 'रेड डेटा बुक' को 1966 में पहली बार IUCN के विशेष उत्तरजीविता आयोग (Special Survival Commission) ने सूची में दर्ज प्रजातियों के गठन, संरक्षण और देखभाल (प्रबंधन) मार्गदर्शिका के रूप में किया था। इस ग्रंथ में संकटापन्न स्तनधारियों तथा पक्षियों के संबंध में जानकारी अन्य जंतुओं ओर पादपों से अधिक विस्तृत है। विलुप्ति के खतरे का सामना कर रहे अल्प जीवों की जानकारी भी इसमें दी जाती है।

इस प्रकाशन के गुलाबी पन्नों में गंभीर रूप से संकटापन्न प्रजातियों के नाम हैं। जंतुओं की स्थिति जैसे ही बदलती है, इसके ग्राहक पाठकों को नए पन्ने भेज दिए जाते हैं। हरे पन्ने उन प्रजातियों के लिए हैं, जो कभी संकटापन्न थे किंतु वे अब संकटापन्न नहीं रहे। जैसे-जैसे समय बीत रहा है, गुलाबी पन्नों की संख्या बढ़ती जा रही है। दु:ख की बात है कि हरे पन्नों की संख्या गिनी-चुनी ही रह गई है।

26.4 वन्य जीवन पर पर्यावरण का प्रभाव

पिछले भाग में विभिन्न जीवभौगोलिक प्रदेशों में वन्यजीवन की व्याख्या करते हुए हम कुछ संकटापन्न तथा विलुप्त हुई प्रजातियों पर चर्चा कर चुके हैं। इस संदर्भ में सोचना यह है कि कभी प्रचुर संख्या में पाई जाने वाली इन प्रजातियों के संकटापन्न या विलुप्त होने के क्या कारण रहे होंगे ? इन कारणों में हमें गौर करना होगा। मौजूदा परिस्थितियों में पर्यावरण और उसमें पाए जाने वाले जीवन के निम्नीकरण के लिए कई क्रमिक और संचयी कारक उत्तरदायी हैं। इन कारकों की सूची तो काफी लम्बी है परन्तु पर्यटन इसमें प्रमुख कारक है। आइए जानें कैसे।

पर्यटन का अभिप्राय है अपनी रुचियों और लक्ष्यों पर आधारित, संसारभर में व्याप्त परिघटनाएं, संबंध और विविध लक्ष्य। ये छुट्टियां मनाने (आराम करने) से लेकर प्राकृतिक या ऐतिहासिक स्थलों का अन्वेषण करने या तीर्थ यात्राएं हो सकती हैं। इन सबके लिए कुछ मूल आधारित संरचना की आवश्यकता है जैसे कि रहने की व्यवस्था करना, बुनियादी सुख सुविधाएं, खान-पान, सड़कें, परिवहन और कूड़े का निपटान। यहां तक तो सब ठीक है, लेकिन वन्यजीवन इससे किस प्रकार प्रभावित हो सकता है ? वन्यजीवन पर पर्यटन के मिले-जुले प्रभाव होते हैं - कुछ सकारात्मक और कुछ नकारात्मक। आइए सकारात्मक प्रभावों पर पहले चर्चा करें। सबसे महत्वपूर्ण प्रभाव है कि यह पर्यटकों को पर्यावरण के प्रति सजग बनाने में सहायक होता है। इसके अलावा, संरक्षण संबंधी कदम उठाने और प्रदूषण को कम करने के लिए पहल करने तथा आवश्यक कदम उठाने के लिए उन्हें प्राय: प्रोत्साहित करना है। इसनें ऐतिहासिक स्थलों, स्मारकों, वन्यजीवन और मनोरम पर्यावरण के रख रखाव के लिए भी प्रोत्साहित किया है। इसकी एक और सकारात्मक विशेषता यह है कि इसने अनुसंधान और पर्यावरणीय प्रभावों पर अध्ययनों को भी बढ़ावा दिया है। वन्यजीवन पर पर्यटन द्वारा प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से पड़ने वाले नकारात्मक प्रभावों की सूची लम्बी है। मुख्य बात यह है कि, इसके द्वारा वन्यजीवन को होने वाली क्षति की पूर्ति नहीं की जा सकती। आइए अब हम पर्यटन से संबंधित उन क्रियाओं/कारकों का अध्ययन करें, जिन्होंने वन्यजीवन को प्रतिकूल रूप से प्रभावित किया है।

पर्यटक आवास

होटलों, कैम्पिंग, स्थलों, कारवां-पर्यटन और पर्वतारोहण कुटीरों के निर्माण से भी वनों का नाश और अनेक वन्य प्रजातियों के आवास के क्षति पहुंचती है। फिर निकटवर्ती क्षेत्रों की प्रजातियां भी इन स्थलों में पर्यटकों के निरंतर आवागमन से अस्त व्यस्त और प्रभावित होती हैं। प्रवालों के उपयोग से समुद्र तटों पर होटलों आदि पर्यटक-आवासों का निर्माण निकटवर्ती क्षेत्रों में दूर तक विद्यमान वन्यजीवन को सिर्फ अस्त-व्यस्त ही नहीं करता, बल्कि उसको नष्ट भी कर डालता है।

परिवहन

पर्यटकों को लाने-ले जाने के लिए वायु, जल और भूतल परिवहन के विभिन्न साधन वन्यजीवन को अस्तव्यस्त तो करते ही हैं, वरन् ये अपने धुएं और अधिक शोरगुल के कारण प्रदूषण को भी बढ़ाते हैं। ध्यान रहे कि वाहनों की बात क्या की जाए जिन इलाकों में लोगों का अत्याधिक पैदल आवागमन हो वह भी वहां की वनस्पति को संघटन को बदल डालता है। अब फ्रांस के ब्रिटोना समुद्र-तट पार ग्लिनान द्वीप समूह का उदाहरण ले लीजिए, जो प्राकृतिक रूप से उगने वाले नार्सिसी के लिए विख्यात हैं। कुछ ही समय पहले जानकारी में आया है कि इस प्रदेश से नार्सिसी का धीरे-धीरे नाश हो रहा है। इसका कारण उन्हें पर्यटकों द्वारा रौंदा जाना और उनके शल्क कंदों (bulbs) को उखाड़कर ले जाना था। इस पौधे के सौंदर्य से आकर्षित पर्यटक परिणामों को जाने बिना इसके शल्क-कंदों को लेकर चलते बनते थे। छोटे जंतुओं के अंडों को कुचल डालने और उन्हें मार डालने में वाहन यातायात का सबसे बड़ा हाथ रहता है। हालांकि यह असावधानीवश या अनजाने में हो जाता है।

नार्सिसी पुष्पी पौधे हैं जिनका सम्बंध अमेरिलिडेसी कुल से है।

वन्यजीवन को कई तरह से प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रभावित करने वाला यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारकों में एक है।

i) वन्य पादपों और पुष्पों का अंधाधुंध संग्रहण : असंगठित और असावधानी पूर्वक किए जाने वाले वानस्पतिक और प्राणि पर्यटन आयोजनों के चलते ही वन्य पादपों का उखाड़ा और वन्य जंतुओं को पकड़ा जाता है। इसका असर उस क्षेत्र विशेष में स्थापित वन्यजीवन पर पड़ता है। इन्हें अज्ञानवश यिका गया कार्य कहा जा सकता है। मगर उन पेशेवर वानस्पतिक और प्राणि संग्रहकर्ताओं की क्या कहें जो व्यापार के लिए वन्य प्रजातियों का सामूहिक संग्रह करते हैं। इसी प्रकार, बद्री-केदार के तीर्थाटन पर जाने वाले पर्यटक भगवान शिव को ब्रह्म कमल (*सौसुरिया लापा*) चढ़ाते हैं। पर्यटक जितना धनी होता है वह उतने ही अधिक ब्रह्म कमल चढ़ाता है। इस तरह के अनेक प्रचलनों के कारण हमारी धार्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक धरोहर ऐसी ही कई प्रजातियां समाप्त होजाती हैं या वे विलुप्ति की कगार पर पहुंच जाती हैं। वनस्पति का अंधाधुंध विनाश करने वाली एक और गतिविधि टेंट - के खंभों और जलावन के लिए पेड़ों का कटान है। उच्च अल्पाइ क्षेत्रों में जलावन की बेहद आवश्यकता पड़ती है। अरमनाथ का जाने वाले यात्री अक्सर *जूनीपेरस* की लकड़ी इकट्ठा करते हैं (चित्र 24) जो रेजिन (राल) होने के कारण गीली होने पर भी जल जाती है।

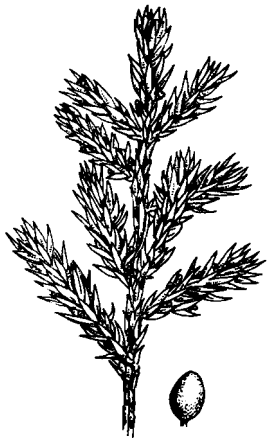

चित्र 24 : *जूनीपरेस* वृक्ष का पर्णसमूह और शंकु दर्शाती एक शाखा।

इन पेड़ों के अत्यधिक कटान के चलते आज यह संकटापन्न प्रजातियों की सूची में शामिल हो गई हैं।

वन्यजीवन में व्यवधान : पर्यटन ने अनेक वन्य जंतुओं के भरण और प्रजनन स्वभावों को प्रभावित किया। नीचे दिए गए उदाहरणों से आपको यह बात और स्पष्ट हो जाएगी। अर्जेंटीना, ब्राजील, कैरीबियाई देश, मेक्सिको, जापान, न्यूजीलैंड, दक्षिण अफ्रीका, नार्वे और ब्रिटेन जैसे देशों में व्हेल दर्शन का तमाशा 10 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से लोकप्रिय होता जा रहा है। यह देखने में आया है कि पर्यटकों का नौकाओं या हवाई जहाजों से इन मछलियों का अत्यधिक हस्तक्षेपी अवलोकन इन प्राणियों में खतरनाक स्तर तक तनाव पैदा करता है। यह इसके सामान्य प्रजनन में व्यावधान उत्पन्न करता है जिसके फलस्वरूप ये मृत-शिशुओं को जन्म देते हैं।

पर्यटकों से वन्यजीवन को हो रहे खतरे का भली भांति दस्तावेज बद्ध किया हुआ एक और उदाहरण भूमध्य सागरीय हरा कच्छुआ कैरेटा है। प्रत्येक वर्ष कोई 800-1000 की संख्या में इसके व्यस्क मादा कछुए प्रजनन के लिए तटों पर घरोंदे बनाते हैं। अन्य समुद्री प्राणियों की तरह ये भी समुद्र में रहते हैं और इसके पृष्ठ जल में विद्यमान मछलियों, क्रस्टेशियन जंतुओं, शैवालों और जैलीफिश का भक्षण करते हैं। कुछ वर्षों से इनकी प्रजनक संख्या में भारी गिरावट देखने में आ रही है। यह गिरावट के छः मुख्य कारण हैं : a) होटल आदि के रूप में तटों के विकास के फलस्वरूप प्रजनन स्थलों का विनाश एक महत्वपूर्ण कारण है। b) मांस और खेल के लिए अनेक कछुओं का भारी संख्या में शिकार किया जाता है। c) प्रदूषण जो विशेष रूप से प्लास्टिक की थैलियों और तेल ईंधन के पिंड से फैल रहा है, उसने भी इन पर अपना दुष्प्रभाव छोड़ा है। जैलीफिश की तरह दिखाई देने वाली प्लास्टिक की थैलियों को खाने से भी इन कछुओं की मौत हो जाती है। पर्यटन के बढ़ने-फैलने के साथ-साथ प्लास्टिक की ये थैलियां समुद्र में यत्र-तत्र सर्वत्र दिखाई देने लगी हैं। अस्सी के दशक में माल्टा के समीप हुए एक सर्वेक्षण में प्रत्येक वर्ग कि.मी. क्षेत्रफल में प्लास्टि की 1200-4000 थैलियां पाई गई थीं। स्थिति में कोई सुधार आने के बजाय यह बिगड़ती ही गई है। d) प्रजनन प्रकृति में उपजे विकार। मादा कछुए स्वभाव से बेहद संकोची है। उनके प्रजनन स्थल तटों में थोड़ा सा भी शोरगुल उन्हें तट पर आकर अंडे देने से डरा देता है। यदि वे अंडे देते भी हैं तो इनको अंडों के खोजी लोग जिनमें कई पर्यटक हैं, उन्हें स्फुटित नहीं होने देते। इन लोगों से जो अंडे बच जाते हैं वे जब नवजात कछुओं को जन्म देते

हैं, इनमें से कई को तो लोमड़ियां खा जाती हैं। e) अंडों में उष्मायन के 52 दिनों के बाद उत्पन्न होने वाले नवजात कछुए प्रकाशानुवर्ती (phototrophic) होते हैं। इसका यह अर्थ है कि अपने खोलों से बाहर निकलने के बाद वे प्रकाश की ओर सहज ही चल पड़ते हैं क्योंकि समुद्र भूमि से अधिक प्रकाशमान होता है। समुद्र तटों पर तेजी से बढ़ते पर्यटन स्थलों साधनों के कारण हजारों नवजात कछुए मर जाते हैं, क्योंकि वे समुद्र की ओर न जाकर इन स्थलों में आते प्रकाश की तरफ चल पड़ते हैं। f) भूमध्यसागरीय तटों पर चार-पहिया वाहनों की बढ़ती आवाजाही भी कछुओं के अंडे देने के कई घोसलों को नष्ट कर रही है।

पर्यटन से जुड़ी गतिविधियों को अनेक जंतुओं और पक्षियों के मौसमी और प्रादेशिक प्रवास व्यवहार में व्यवधान जनक पाया गया है। सड़कों, कुटीरों, होटलों और कैम्पों का निर्माण और उनका प्रयोग प्रवासी जंतुओं को नुकसान पहुंचाता है। इसका एक ज्वलंत उदाहरण भरतपुर पक्षी उद्यान है, जो कभी साइबेरियाई सारसों का एक प्रिय प्रवास स्थल था। अब हम यह सुनते और जानते हैं कि यहां अब इन मेहमान पक्षियों का एक जोड़ा भर देखा जाना ही हर्ष का विषय बन जाता है। हर वर्ष भारी संख्या में पर्यटक और पक्षी दर्शन के लिए इस स्थल में एकत्र होते हैं। पर इन पक्षियों का दर्शन दुर्लभ होते जा रहा है, जिससे पर्यटन-स्थल के रूप में इस उद्यान के भविष्य पर एक प्रश्नचिन्ह लग गया है।

शिकार और प्राकृतिक आवास-स्थलों में अतिक्रमण से भी वन्यजीवन प्रभावित होता है। फोटोग्राफी भी इनके लिए हानिकर है। बड़े जंतुओं और पक्षियों पर प्रभाव तो स्पष्ट दिखाई देता है, मगर सरीसृपों कीटों और अन्य किस्म के जंतुओं पर पड़ने वाले प्रभावों पर कोई विशेष अध्ययन नहीं हुए हैं। पारिस्थितिकी संतुलन के लिए जंतु भी इतने ही महत्वपूर्ण है। पर वन्यजीवन की गुणवत्ता भी प्रभावित होती है। यह देखने में आया है कि अभयारण्यों, राष्ट्रीय उद्यानों और वन्यजीव-विहारों में नित भारी संख्या में आने वाले पर्यटकों के नियमित संपर्क में आने से अनेक उग्र जंतुओं ने अपना उग्र-स्वभाव छोड़ दिया है। उदाहरण के लिए लोग उनकी तरफ खाने की चीजें, चाकलेट आदि फेंकते हैं, इसने भालू और वानरों जैसे वन्य जन्तुओं को कोमल स्वभाव का बना डाला है, तथा वे दर्शकों से और पाने के लिए लालायित रहते हैं।

यह एक सामान्य मानवीय प्रवृति है कि प्राणी उद्यानों में आने पर लोग वन्य प्राणियों के समीप आना चाहते हैं। किंतु यह उन्हें परेशानी में डालता है और कई वन्य प्रजातियां इसे पंसद भी नहीं करती। उनके एकांत में यह विध्न उन पर बुरा असर डालता है, विशेषकर ऐसे जंतुओं पर जो एकांत में प्रजनन करते हैं। उदाहरण के लिए महासारंग अपने घोंसले की ताकझांक करने वाले लोगों से बड़ा उद्वेलित हो उठता है। इसके परिणामस्वरूप यह प्रजनन ही नहीं करता है।

iii) वन्यजीवों के स्मृतिचिन्ह: यह स्वाभाविक है कि पर्यटक जिस जगह जाते हैं वे वहां से कुछ स्मृतिचिन्ह बटोर लाते हैं। यह भी एक चिन्ताजनक विषय है खासकर जब स्मृतिचिन्ह वन्यजीवों से तैयार किए जा रहे हैं। इस उद्देश्य के लिए वन्य जन्तुओं को पकड़ा और मार दिया जाता है या उनका शिकार किया जाता है। मरे हुए जंतु उनके फर, खालें, हाथी दांत के आभूषणों, सींगों, पूंछों, खुरों से चाबी के छल्लों जैसे कई प्रकार के सामान इन जंतुओं के-जीवन की कीमत पर या उनके शरीरों को जख्म देकर ही बनाए जा सकते हैं। तितलियों तक को नहीं छोड़ा जाता। संग्रहकर्ताओं की सामग्री के रूप में तितलियों को भी खूब तलाशा जाने लगा है। सो तितलियां की अनेक प्रजातियां अब संकटापन्न जीवों की सूची में आ गई है।

iv) खेल: स्कूबा और नौकायन के साधनों का बेतरतीब उपयोग, सिर्फ-राइडिंग के पेट्रोल चालित वाहन और मनोरंजन के अन्य वाहन पानी में हानिकारक अवशेष छोड़ जाते हैं। इसका परिणाम है जल-निकायों में धीरे-धीरे बढ़ता प्रदूषण। बदले में यह प्रदूषण इन जलनिकायों में वास करने वाले वन्यजीवों को प्रभावित करता है। अनगिनत वन्यजीवन संरक्षण अभियानों के बावजूद भी - आखेट जंतु कई पर्यटकों का प्रिय खेल है। कुछ पक्षियों और जंतुओं के आखेट के लिए पर्यटकों और लोगों को दिए जाने वाले सीमित लाइसेंसों की आड़ मे कई कीमती जंतुओं का शिकार अभी भी जारी है।

पर्यटक जहां जाते हैं और ठहरते हैं, उस जगह कुछ अपशिष्ट पदार्थों का पैदा होना और छूट जाना स्वाभाविक है। धीरे-धीरे हम सब, पर्यटन-स्थलों पर फैले कूड़ा-करकट को रोजमर्रा की बात मानने लगे हैं। हिमालय में ट्रेकिंग की बात तो छोड़िए अभयारण्यों और वन्यजीव आरक्षित क्षेत्रों में भी पालिथीन की थैलियों, बोतलों और डिब्बों के दृश्य अब आम होते जा रहे हैं। तिस पर पर्यटन आवास सुविधाओं से मल को संसाधित किए बिना ही निकटवर्ती नदियों या समुद्र में छोड़ दिया जाता है। इसके तात्कालिक नहीं तो वन्यजीवन और अंततः संपूर्ण पारिस्थितिक तंत्र पर दीर्घकालीन प्रभाव पड़ते हैं।

विश्व-विख्यात डल झील इस अप्रभावी अपशिष्ट व्यवस्था की शिकार बन गई है। डल झील में अब तक यही हुआ है और अब भी यही हो रहा है कि उसमें तमाम चलने वाली हाउस बोटों से झील में भारी मात्रा में अपशिष्ट पदार्थ और मल-मूत्र छोड़ दिया जाता है, जिससे इसका पानी पोषक तत्वों से समृद्ध हो जाता है। इसके फलस्वरूप हुई भरपूर शैवाल वृद्धि ने इसके पानी को पूर्णतः अवरूद्ध कर दिया है। यह वृद्धि पानी में घुली ऑक्सिजन को कम कर देती है, जिससे झील में मछली और अन्य जलकीटों की मृत्यु हो जाती है। इसी प्रकार ऐसे अपशिष्ट पदार्थों के आ मिलने से अन्य जल-निकाय भी बेहद प्रदूषित हो जाते हैं। कुंभ मेले को ही लीजिए। इस मौके पर लाखों लोग एक ही समय में एक ही जगह पर इकट्ठा होते हैं और पवित्र स्नान करते हैं। इसके फलस्वरूप कोलीफार्म जीवाणु की संख्या जो सामान्यतया 300 होती है वह कुंभ मेले के तत्काल बाद बढ़कर 16,500 तक हो जाती है और बहती जलधारा में कई किलोमीटर तक यही संख्या बनी रहती है।

जल निकायों के अलावा, वनविहीन स्थलों पर भी अपशिष्ट पदार्थ डाल दिए जाते हैं। यह खरपतवारों की भरूपर वृद्धि के लिए अनुकूल वातावरण प्रदान करते हैं, जो बदले में इनसे परस्पर-क्रिया करने वाली अन्य प्रजातियों को प्रभावित करता है। यही नहीं ये त्याज्य पदार्थ अपने साथ कई प्रकार के कीट और अन्य रोगाणुओं को साथ लेकर आते हैं, जो दुर्लभ संवेदनशील प्रजातियों के लिए खतरा पैदा करते हैं। हालांकि हम अपशिष्ट-पदार्थों को पैदा होने से रोक तो नहीं सकते पर दो कार्य अवश्य किए जा सकते हैं। एक त्याज्य-पदार्थों के उत्पादन को कम से कम रखा जाए और दो यह सुनिश्चित किया जाए कि जितना भी अपशिष्ट पैदा हो वह जैवनिम्नीकरण (biodegradeable) हो। सबसे बड़ा चिंता का कारण है तो जैव-निम्नीकरणीय (non-biodegradable) अपशिष्ट है, क्योंकि जैव-निम्नीकरणीय अपशिष्ट कालांतर में अपने-अपने पोषण-चक्रों में अन्य जीवन-चक्र के लिए प्रवेश कर जाते हैं।

कुछ भी कह लिया जाए यह निश्चित है कि पर्यटन उद्योग न सिर्फ बना रहेगा। बल्कि यह फूलता-फालता भी रहेगा क्योंकि इसका एक देश के आर्थिक विकास में निश्चित योगदान है। यह समझा जाना जरूरी है कि सांकेतिक रूप से पर्यटन और पर्यावरण साथ-साथ चलते हैं। आज कई पर्यटन-स्थलों पर भारी दबाव है और वे धीरे-धीरे अपनी वह प्राकृतिक विशेषता और सौंदर्य को खो रहे हैं, जिसके लिए पर्यटक यहां आया करते हैं। हमारे सामने हमेशा यही प्रश्न होना चाहिए कि तब क्या होगा जब पर्यटन-स्थल पर्यटकों में कोई आकर्षण पैदा नहीं कर पाएंगे ? इसलिए सोने का अंडा देने वाली मुर्गी को हलाल मत होने दीजिए, बल्कि उसे बचाइए। यही कारण है कि 'इको टूअरिज्म' संपोषणीय पर्यटन (Sustainable tourism) या उत्तरदायित्व पूर्ण पर्यटन को बढ़ावा दिया जा रहा है। इस संबंध में TS-1, खंड -2, इकाई- 9 और खंड-4, इकाई- 16 को दोहराइए।)।

बोध प्रश्न 2

1) वन्यजीवन को मानवजाति के लिए एक अमूल्य संसाधन क्यों माना जाता है ? पांच कारण बताइए।

.....

.....

.....

.....

2) वन्यजीवन पर पर्यटन और संबंधित क्रिया-कलापों द्वारा पड़ने वाले प्रभावों के बारे में बताइए।

.....

.....

.....

.....

26.5 सारांश

इस इकाई में आपने पढ़ा कि :

- वनस्पति किसी एक क्षेत्र विशेष में पाई जाने वाले पूर्ण पादप जीवन को कहते है।
- वन्यजीवन में सूक्ष्म और वृहद दोनों स्तरों पर सभी जीव आते हैं, जो मानव की देखभाल के बिना ही प्राकृतिक परिस्थितियों में पाए जाते हैं।
- भारत को दस जीवभौगोलिक प्रदेशों में बांटा गया है– ट्रांस हिमालय, हिमालय, भारत का मरूस्थल, अर्ध शुष्क, पश्चिमी घाट, दक्षिण प्रायद्वीप, गंगा का मैदान, उत्तरपूर्वी भारत, द्वीप और समुद्रतट। प्रत्येक प्रदेश की अपनी कुछ निश्चित भौगोलिक और जैविक विशेषताएं हैं। कुछ जैविक घटकों की यह विशिष्टता है कि वे कुछ विशेष प्रदेशों में तो पाए जाते हैं, अन्यत्र नहीं।
- वन्यजीवन की उपयोगिता असीम हैं हमारे लिए यह प्राकृतिक सौंदर्य, आश्चर्य और आनंद का एक स्रोत ही नहीं बल्कि मानवजाति के एक बहुत बड़े हिस्से को संबल भी प्रदान करता है। मानव जाति के लिए वन्यजीवन 'जीनपूल' बेहद उपयोगी है विशेषकर पादप और पशुधन को और उन्नत बनाने में। सबसे बड़ी बात तो यह है कि वन्यजीवन इस ग्रह में पारिस्थितिकीय संतुलन को बनाए रखने में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।
- पर्यटन संबंधी अनेकों गतिविधियों ने प्रत्यक्ष या अपरोक्ष रूप से वन्यजीवन को प्रभावित किया है। सड़कें और पर्यटक आवासों का निर्माण वन्य क्षेत्रों में परिवहन का उपयोग और पर्यटकों का व्यवहार कुछ ऐसे व्याक क्षेत्र में हैं जो वन्यजीवन पर नकारात्मक प्रभाव डाल रहे हैं।

26.6 शब्दावली

पक्षिजात (Avifauna) : किसी एक क्षेत्र में पाए जाने वाले सभी पक्षी

जैव विविधता (Biodiversity) : सभी स्रोतों के जीवों की विविधता जिनमें स्थलीय, समुद्री तथा अन्य जलीय पारिस्थितिक तंत्र और पारिस्थितिकीय कांप्लेक्स आते हैं, जिनके ये जीव एक अंग होते हैं। इसमें प्रजातियों में, प्रजातियों के बीच और पारिस्थितक तंत्रों में पाई जाने वाली विविधता सम्मिलित हैं।

बोविड (Bovid) : ये खुरदार, स्तनधारी जंतु हैं। बोविडों की लगभग 120 प्रजातियां हैं। इनमें कुरंग, गवल, बकरी और ओरिक्स शामिल हैं।

केल्सियमी (Calcareous) : जिनमें कैल्सियम कार्बोनेट या उसका आवरण पाया जाता है।

पारिस्थितिकतंत्र (Ecosystem)	:	अपने भौतिक पर्यावरण के साथ परस्पर-क्रिया करते जीव समुदाय की एक संकटापन्न अवधारणा है।
संकाटापन्न (Endangered)	:	कोई प्रजाति तब संकटापन्न कहलाती है जब से उसके निकट भविष्य में विलुप्त होने का खतरा हो। या एक प्रजाति विशेष की संख्या इतनी कम हो जाती है कि वह संकटापन्न हो सकती है।
स्थानिक पादप (Endemic Plant)	:	सिर्फ किसी एक क्षेत्र विशेष या भाग में पाया जाने वाला पादप। अनेक उष्णकटिबंधी द्वीपों में स्थानिक प्रजातियां पाई जाती हैं। मगर विश्व में कहीं और नहीं पाई जाती।
सदाबहार वन (Evergreen Forest)	:	ऐसे वन जिनमें स्थायी रूप से हरे पादपों का बाहुल्य रहता है। यानी पत्तियों का उगना और झाड़ना, मौसमी न होकर एक सतत प्रक्रम है।
प्राणिजात (Fauna)	:	एक क्षेत्र विशेष में पाए जाने वाले जंतुओं के लिए प्रयोग किया गया एक सामूहिक-शब्द।
वनस्पति-जात (Flota)	:	एक क्षेत्र या आवास विशेष में विद्यमान पादपों का सूचक, एवं सामूहिक-शब्द।
लवण मृदोद्भिद् (Haloplytes)	:	ऐसा पादप जो सोडियम क्लोराइड या अन्य सोडियम लवणों से भरपूर मिट्टी में उग सकता है।
अकशेरूकी (Invetoribrates)	:	ऐसे जंतुओं का एक प्रमुख समूह, जिनमें रीढ़ या आंतरिक कंकाल नहीं पाया जाता है।
कुंज (Scrub)	:	निम्नकोटि की मृदा वाली भूमि की एक पट्टी, जो साधारणतया सघन, बौने या वृद्धि रूद्ध वृक्षों और झाड़ियों से ढकी रहती हैं।
समुद्री शैवाल (Seaweed)	:	सागर में उगने वाले शैवाल।
कशेरूकी (Vertebrates)	:	रीढ़ वाले जंतुओं का एक प्रधान समूह।

26.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) भाग 26.1 देखिए।

2) भाग 26.1 देखिए।

3) भाग 26.2 देखें। जीवभौगोलिक क्षेत्र का अभिप्राय जीवन रूप पर आधारित प्रदेशन्यास से है। इसमें उस क्षेत्र की भौतिक परिस्थितियों को भी शामिल किया जाता है।

4) भाग 26.2 देखें।

बोध प्रश्न 2

1) भाग 26.3 देखें।

2) भाग 26.4 देखें।